दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० २४९५ तंत्री-पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार, भावनगर वर्ष २५ अंक नं० ७

गुरु-उपदेश

चारित्र

गुरु दयाल तेरा दुख लखिकैं, सुन लै जो फरमावै है ।गुरु० ॥
तोमैं तेरा जतन बतावै, लोभ कछू नहिं चावै है ।गुरु० ॥१॥

ज्ञान

पर सुभाव को मोरया चाहै, अपना उसा बनावै है।
सो तो कबहूँ हुवा न होसी, नाहक रोग लगावै है ।गुरु० ॥२॥
खोटी खरी जस करी कमाई, तैसी तेरै आवे है।
चिंता आगि उठाय हिया मैं, नाक जान जलावै है ।गुरु० ॥३॥

दर्शन

पर अपनावै सो दुख पावै, बुधजन ऐसे गावै है।
पर को त्यागि आप थिर तिष्ठै, सो अविचल सुख पावै है ।गुरु० ॥४॥

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

नवम्बर १९६९ वार्षिक मूल्य ३) रुपये (२९५) एक अंक २५ पैसा [आश्विन २४९५

आओ दीपावली मनायें

दीपावली अर्थात् दीपों की पंक्तियाँ सजाकर मनाया गया महोत्सव... जिसका सच्चा नाम निर्वाण महोत्सव यानी भगवान महावीर की मुक्ति का मंगल महोत्सव।.... जगत को वीतरागमार्ग का पावन सन्देश देनेवाला यह मंगल पर्व भारत में ढाई हजार वर्ष से चला आ रहा है।

कार्तिक कृष्णा अमावस्या का वह स्वर्णिम प्रभात मात्र घी के दीपकों से नहीं परंतु रत्नत्रय के वीतरागी प्रकाश से अलोकित हो रहा था और जगत को सन्देश दे रहा था कि हे जीवो! भगवान महावीर द्वारा प्रकाशित रत्नत्रयमार्ग का तुम अनुसरण करो... जिस रत्नत्रय द्वारा भगवान ने सिद्धपद को साधा, उस रत्नत्रय के दीप तुम भी अपने आत्मा में प्रज्वलित करो।

भगवान महावीर के मोक्ष का यह मंगल महोत्सव गौतम गणधर ने उसी दिन ज्ञान के अनंत दीपक प्रगट करके सर्वोत्कृष्टरूप से मनाया! अनेक वीतरागी संतों ने भी अपने आत्मा में रत्नत्रय के दीपक प्रज्वलित कर-करके मोक्षमहोत्सव का प्रारंभ किया। आज भले ही हमारे पास अखंड केवलज्ञानदीपक न हो, परंतु उसी महान दीपक द्वारा प्रज्वलित श्रुतज्ञान का दीप, सम्यग्दर्शन का दीप हमारे मोक्ष का मार्ग प्रकाशित कर रहा है... भगवान की अमोघ वाणी आज भी हमें सुनने को मिल रही है... आओ, हम भगवान महावीर के उस पावन वीतराग मार्ग का अनुसरण करके, रत्नत्रय के दीप जलाकर दीपावली मनायें।

शाश्वत् सुख का मार्गदर्शक मासिक-पत्र

आत्मधर्म

संपादक : (१) श्री ब्र० गुलाबचंद जैन (२) श्री ब्र० हरिलाल जैन

नवम्बर : १९६९ ☆ आश्विन, वीर नि०सं० २४९५, वर्ष २५ वाँ ☆ अंक : ७

सम्यग्दृष्टि को वंदना

दशा है हमारी एक चेतना विराजमान,
आन परभावनसों तिहुंकाल न्यारी है;
अपनो स्वरूप शुद्ध अनुभवे आठों जाम,
आनंद को धाम गुणग्राम विसतारी है;
परम प्रभाव परिपूरण अखंड ज्ञान,
सुख को निधान लखि आन रीति डारी है;
ऐसी अवगाह गाढ आई परतीति जाके,
कहे दीपचंद ताको वंदना हमारी है।

(ज्ञानदर्पण : ५)

'हमारी दशा एक चेतनारूप विराजमान है और अन्य परभावों से त्रिकाल भिन्न है'—इसप्रकार जो अपने स्वरूप का आठों याम शुद्ध अनुभव करता है, आनंद के धाम गुणों के समूह का जिसने विस्तार किया है; परमप्रभावरूप परिपूर्ण अखंड ज्ञान और सुख के निधान को देखकर जिसने अन्य (परभावों की) रीति छोड़ दी है;—ऐसी अवगाढ़ दृढ़ प्रतीति जिसके हुई है, उसे हमारी वंदना है—ऐसा कविश्री दीपचंदजी कहते हैं।

आत्म-अनुभव करने का लक्षण

(पूज्य स्वामीजी का श्री प्रवचनसार गाथा १७२ 'अलिंगग्रहण' पर मार्मिक प्रवचन)

* आत्मा अर्थात् ज्ञानस्वभाव, ज्ञान उसे कहने में आता है कि जिसके साथ अतीन्द्रिय आनंद हो।

* ज्ञान को पर की, इन्द्रियों की, राग की अपेक्षा नहीं; मात्र आत्मा के स्वभाव का अवलंबन करनेवाला ज्ञान, वही यथार्थ ज्ञान है। अर्थात् अतीन्द्रिय ज्ञानस्वभाव, वह आत्मा है। इन्द्रियों द्वारा जाने, ऐसा आत्मा नहीं।

* पाँच इन्द्रियों के अवलंबन से जो ज्ञान हुआ, वह वास्तविक आत्मा नहीं; वह यथार्थ ज्ञान नहीं। अंतरंग के चैतन्यपाताल में से जो ज्ञान प्रगट हो, वह यथार्थ ज्ञान, और वह वास्तविक आत्मा है। शब्दश्रुत के आश्रय से हुआ ज्ञान, वह यथार्थ भावश्रुत नहीं; चैतन्यस्वभाव के आश्रय से ही भावश्रुत होता है; और वह अतीन्द्रिय ज्ञान सहित है।

* इन्द्रियज्ञान द्वारा तो अनादि काल से जानता है—परंतु वह तो अज्ञान है। इन्द्रियज्ञान द्वारा जाना, इतना ही मैं—ऐसी मिथ्याबुद्धि के कारण आत्मा का परमार्थस्वरूप जानने में नहीं आता। इन्द्रियों के अवलंबन में आकुलता है, वह आत्मा के परमार्थ स्वरूप में नहीं।

* अतीन्द्रिय ज्ञानस्वरूप अमूर्त आत्मा, वह मूर्त इन्द्रियों द्वारा जानने का कार्य किसप्रकार करे? 'इन्द्रियों द्वारा जाने, वह आत्मा'—ऐसा जानने जाये तो इन्द्रियों से भिन्न आत्मा का परमार्थस्वरूप जानने में नहीं आता; इन्द्रियों से आत्मा अत्यंत भिन्न है, ऐसा भेदज्ञान करवाके अतीन्द्रिय ज्ञानमय आत्मा की पहिचान करायी है।

* स्वभाव का अवलंबन करनेवाला अतीन्द्रिय ज्ञान, वही मोक्ष का कारण है, उसी ज्ञान में सुख है। इन्द्रियज्ञान तो विषयों का अवलंबन करनेवाला और आकुलता उत्पादक है। इस कारण वह तो बंध का कारण है। राग तो आत्मा नहीं, और केवल इन्द्रियज्ञान, वह भी वास्तविक आत्मा नहीं। आत्मा तो अतीन्द्रिय ज्ञानस्वरूप है।

* इन्द्रियाँ जड़ अचेतन है, उनके साथ तन्मयपना माननेवाला इन्द्रियज्ञान, वह अतीन्द्रिय आत्मा का स्वभाव नहीं। जानने के लिये इन्द्रियाँ कहीं आत्मा का द्वार नहीं अर्थात्

उन इन्द्रियों द्वारा जानने में नहीं आता। आत्मा स्वयं अतीन्द्रिय है तो वह अतीन्द्रियज्ञान से ही जाननेवाला है।

* आत्मा जड़ इन्द्रियोंरूप नहीं अर्थात् उन जड़ इन्द्रियों से होनेवाला ज्ञान वह भी वास्तविक आत्मा नहीं। इन्द्रियज्ञान, वह आत्मा का परमार्थस्वरूप नहीं।

* इन्द्रियोंरूपी नदी से ज्ञानसमुद्र में ज्वार नहीं आता, अतीन्द्रियज्ञान द्वारा ज्ञानसमुद्र स्वयं अपने में एकाग्र होने पर आनंद के तरंग सहित ज्ञान का ज्वार आता है।

* * *

* ज्ञेयरूप ऐसा परमार्थस्वरूप आत्मा इन्द्रियज्ञान से अनुभव में नहीं आ सकता। इन्द्रियों के अवलंबनवाला ज्ञान आत्मा को जान नहीं सकता। चिदानंदस्वभाव में अंतर्मुख हुए ज्ञान में से इन्द्रियों का अवलंबन छूट जाता है; तथा इसप्रकार अतीन्द्रिय हुआ ज्ञान ही आत्मा को जान सकता है। ऐसे ज्ञान से आत्मा का अनुभव करने पर आनंद प्रगट होता है।

* द्रव्यश्रुत के शब्दों का ग्रहण इन्द्रिय द्वारा होता है परंतु ज्ञानस्वरूप आत्मा का ग्रहण इन्द्रियों द्वारा नहीं होता। अंतर्मुख आनंदमय ऐसे भावश्रुत द्वारा ही आत्मा का स्वसंवेदन होता है।

* इन्द्रियज्ञान से जड़ जानने में आता है; आत्मा इन्द्रियज्ञान से जानने में नहीं आता। आत्मा और शरीर की भिन्नता समझाते हुए 'योगसार' में कहा है कि आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा ही जानने में आता है; इन्द्रियज्ञान से वह जानने में नहीं आता, जबकि शरीर तो इन्द्रियज्ञान द्वारा भी जानने में आता है–इसलिये आत्मा और शरीर भिन्न है।

* ज्ञानी की वाणी द्वारा तो आत्मा जानने में आता है न?—तो कहते हैं कि नहीं; अतीन्द्रियज्ञान द्वारा ही आत्मा जानने में आता है। उसमें ज्ञानी की वाणी निमित्त भले हो परंतु जब तक उस वाणी का लक्ष रहे, तब तक आत्मा जानने में नहीं आता; वाणी से रहित होकर इन्द्रियों का अवलंबन छोड़कर अतीन्द्रियज्ञान द्वारा स्वसंवेदन करे, तभी आत्मा जानने में आता है।

* देखो, यह शुद्ध स्वज्ञेय की बात है, इस स्वज्ञेय में रागादि अशुद्धता नहीं आती है। भाई! ऐसे अपने स्वज्ञेय को तू एकबार देख तो सही। स्वज्ञेय को देखते ही तेरा ज्ञान अतीन्द्रिय होकर स्वज्ञेय की अचिंत्य महिमा में ऐसा लीन होगा कि फिर जगत का कोई ज्ञेय तुझे अपनेरूप

भासित नहीं होता। स्वज्ञेय को जानने से ज्ञान उसकी महिमा में तन्मय होता है, निजमहिमा में लीन होता है। यद्यपि राग भी स्वज्ञेय है, परंतु शुद्ध द्रव्य-गुण को स्वज्ञेयरूप लक्ष में लेने पर उसकी अचिंत्य महिमा से राग तो गौण हो जाता है, अर्थात् शुद्धस्वज्ञेय से बाहर रह जाता है। इसप्रकार स्वज्ञेय को जाननेवाले ज्ञान में सहजस्वभाव की मुख्यता और राग की गौणता (यानी निश्चय की मुख्यता और व्यवहार की गौणता) हो जाती है। भूतार्थस्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन होने का महान सिद्धांत भी इसमें गर्भित है।

* देखो, स्वज्ञेय को जानने की अर्थात् सम्यग्दर्शन करने की यह बात है। भाई! अपने ज्ञान को स्वज्ञेयोन्मुख किये बिना तुझे अपना सच्चा ज्ञान कहाँ से होगा? स्वसन्मुख हुए अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा ही अपनी अचिंत्य प्रभुता तुझे दिखायी देगी, और परम आनंद होगा।

* इन्द्रियों का, राग का, व्यवहार का अवलंबन छोड़कर निजस्वभाव का अवलंबन लेकर ज्यों ही ज्ञानचेतना स्वज्ञेय में मग्न हुई, त्यों ही अतीन्द्रिय आनंद का सागर उल्लसित हुआ। सागर उछले, उसे कौन रोक सकता है? ज्ञान यदि इन्द्रियों के अवलंबन में रुक जाये तो आनंद का सागर उल्लसित नहीं होगा।

* जिज्ञासु शिष्य आत्मा को जानने की उत्कंठा से पूछता है कि प्रभु! आत्मा की ऐसी असाधारण निशानी बताओ कि जिसके द्वारा सर्व परद्रव्यों से भिन्न आत्मा का अनुभव हो। ऐसे जिज्ञासु को 'अलिंगग्रहण' के अर्थों द्वारा आचार्यदेव ने परमार्थ आत्मा की पहिचान करायी है। अहो, स्वानुभव के अलौकिक रहस्य खोलकर संतों ने महान उपकार किया है।

* मात्र अनुमान के बल से आत्मा जानने में नहीं आता। इन्द्रियगम्य चिह्नों से आत्मा का अनुमान नहीं होता। अनुमान, वह व्यवहार है; स्वसंवेदनप्रत्यक्ष, वह निश्चय है। स्वसंवेदनप्रत्यक्षरूप निश्चय बिना केवल परोक्ष अनुमान से आत्मा का सच्चा स्वरूप जानने में नहीं आता।

* अनुभव बिना मात्र शास्त्रज्ञान से आत्मा जानने में नहीं आता, केवल शास्त्र की ओर का ज्ञान, वह भी इन्द्रियज्ञान है, उससे अनुमान करके भी आत्मा का स्वरूप पहिचाना नहीं जाता। अंतर्मुख होकर निर्विकल्प अनुभव करे, तभी आत्मा का सच्चा स्वरूप अनुभव में आता है।

* आत्मा का ज्ञान ऐसा पंगु नहीं कि उसे इन्द्रियों का सहारा लेना पड़े। इन्द्रियगम्य

चिह्नों या मनगम्य ऐसे संकल्प-विकल्पों से आत्मा का परमार्थ स्वरूप निश्चित नहीं हो सकता; क्योंकि इन्द्रियगम्य चिह्न, वह कहीं आत्मा का नहीं। आत्मा का चिह्न तो अतीन्द्रिय उपयोग है; और वह तो प्रत्यक्ष स्वसंवेदन का विषय है। आत्मा में ऐसी प्रकाशशक्ति है कि स्वसंवेदन के प्रकाश से स्वयं अपने को प्रत्यक्ष अनुभव करता है।

* जिसने अपने आत्मा का स्वसंवेदनप्रत्यक्ष कर लिया है, वही अन्य आत्मा के स्वरूप को जान सकता है। दूसरे जीव को स्वसंवेदनप्रत्यक्ष हुआ हो, उसे भी वास्तव में तब ही पहिचान सकता है कि जब अपने आत्मा का स्वसंवेदन प्रत्यक्ष कर लिया हो। अथवा सामने अज्ञानी जीव हो, उसे स्वसंवेदन न हुआ हो, ऐसे जीव का भी जो यथार्थ चैतन्यस्वरूप है, उसे धर्मी जीव अपने स्वसंवेदनपूर्वक के अनुमान से जान लेते हैं। स्वसंवेदनरहित मात्र अनुमान से जानने में आये, ऐसा आत्मा नहीं।

* जिसको स्वसंवेदन न हुआ हो, ऐसा अज्ञानी जीव इस आत्मा का यथार्थ स्वरूप अनुमान से जान नहीं सकता, तथा वह आत्मा मात्र अनुमान से पर को जाननेवाला नहीं, इस बात को पाँचवें बोल में कहेंगे।

* निश्चय सहित का व्यवहारज्ञान, अर्थात् प्रत्यक्षपूर्वक का अनुमान ज्ञान यथार्थ होता है। प्रत्यक्षरहित मात्र अनुमान, वह सच्चा अनुमान नहीं। मात्र अनुमान, वह आत्मा का स्वरूप नहीं, और उससे आत्मा जानने में नहीं आता है।

* आत्मा ऐसा नहीं कि मात्र अनुमान से कोई उसे जान ले।—इसमें अद्‌भुत रहस्य है। अपने आत्मा का प्रत्यक्ष स्वसंवेदन हुए बिना केवली की, मुनि की अथवा धर्मी की सच्ची पहिचान नहीं हो सकती।

* अहा, चैतन्य की अचिंत्य महिमा किसप्रकार हो, उसकी यह बात है। राग से भिन्न होकर ज्ञानस्वरूपी आत्मा का निर्णय करे, तभी स्व-पर आत्मा की सच्ची पहिचान होती है। तथा ऐसी पहिचान हो, उसे सच्चे देव-गुरु पर अपूर्व प्रमोद जागृत होता है। पहिचान बिना वास्तविक प्रमोद कहाँ से आये?

* बारह अंग का तथा जिनशासन का रहस्य आत्मा के स्वसंवेदन में समा जाता है। अंतर्मुख होकर चिदानन्दतत्त्व का अनुभव करनेवाले धर्मात्मा ही धर्म में आगे बढ़े हैं। जिसको चैतन्य का अनुभव नहीं, उसे अन्य चाहे जितनी धारणा हो तो भी वह संसार के मार्ग में ही है,

धर्म के मार्ग में नहीं। धर्म का मार्ग तो अंतर चैतन्य में है।

* अनुभवी हो, वही अनुभवी को पहिचानता है।

* भाई, आत्मा के अंतर अनुभव को जाने बिना मात्र बाह्य के अनुमान से तू ज्ञानी का माप निकालने जायेगा तो भ्रमणा में पड़ जायेगा।

* यह आत्मा भी ऐसा नहीं कि मात्र अनुमान से, मात्र शास्त्रज्ञान से अन्य को जान सके। वह स्वानुभूतिपूर्वक स्व-पर को जाननेवाला है। यह आत्मा अन्य आत्मा को, अर्थात् अरिहंत को, सिद्ध को, मुनि को, सम्यग्दृष्टि ज्ञानी को स्वसंवेदन बिना मात्र अनुमान से जान नहीं सकता; स्वसंवेदनपूर्वक जानता है।

* मात्र परप्रकाशक ज्ञान, वह यथार्थ ज्ञान नहीं, उसमें सुख नहीं और वह आत्मा का स्वरूप नहीं। आत्मा को जाननेवाला जो स्वप्रकाशक ज्ञान, वह सुखस्वरूप है। कलश-टीका के प्रथम ही श्लोक में यह बात की है। आत्मा ही सारभूत है-क्योंकि उसे जानने पर जाननेवाले को आनंद होता है। परसन्मुखता से आनंद नहीं होता, आत्मा में स्वसन्मुखता से आनंद होता है। इसलिये आत्मा सर्व पदार्थों में सार है।

* आत्मा प्रत्यक्ष ज्ञाता है। आत्मा का सम्यग्दर्शन होने के समय आत्मा स्वसंवेदन से स्वयं अपने को प्रत्यक्ष करता है। स्वानुभूति से प्रकाशित हो अर्थात् आत्मा स्वयं अपने को प्रत्यक्ष करे, ऐसा उसका स्वभाव है। यदि आत्मा को प्रत्यक्ष न करे तो वह ज्ञान सच्चा नहीं, वह सम्यग्दर्शन नहीं। एकांत परोक्ष ज्ञान, वह मिथ्याज्ञान है। जब सम्यग्दर्शन होता है, तब स्वानुभूतिपूर्वक ही होता है। आत्मा को स्वसंवेदन में प्रत्यक्ष करने से सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। ऐसे सम्यग्दर्शन की अपूर्व विधि आचार्य भगवान ने समझायी है। ●

मैं एक ज्ञानस्वभाव ही हूँ, शरीरादि मैं नहीं हूँ और राग मेरा स्वरूप नहीं है, ज्ञानस्वभाव में ही मेरा सर्वस्व है—ऐसा लक्ष्य अन्तर में हुए बिना निश्चय-व्यवहार या उपादान-निमित्त की अनादिकालीन भूल दूर नहीं होती, और वह भूल दूर हुए बिना अन्य चाहे जितने उपाय करे तो भी कल्याण नहीं हो सकता। इसलिये जिसे आत्मा का कल्याण करना हो, धर्मी होना हो, उसे यह बात समझकर निर्णय करने योग्य है। —पूज्य गुरुदेव

आत्मा की अकार्यकारणत्व शक्ति

[श्री समयसार के परिशिष्ट में जो ४७ शक्तियों का वर्णन किया गया है
उनमें से १४वीं अकार्यकारणत्व शक्तिरूप पूज्य स्वामीजी का प्रवचन]

अनादि-अनंत प्रत्येक आत्मा अनंत शक्तियों का (गुणों का) पिंड है। उस परिपूर्ण शक्तिवान आत्मा में दृष्टि देकर एकाग्र होने से सुख और सुख के उपाय का प्रारंभ होता है तथा उसी को स्वाधीनता का मार्ग कहा जाता है।

१४वीं अकार्यकारणत्वशक्ति भी अनंत शक्तियों के साथ ही भगवान आत्मा में सदा विद्यमान है। जो अन्य से नहीं किया जाता और अन्य को नहीं करता, ऐसे एक स्वद्रव्यस्वरूप अकार्यकारणत्वशक्ति आत्मा में है। राग द्वारा या निमित्त से जीव का कार्य होगा, पराश्रय-व्यवहार से शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान-चारित्ररूपी कार्य होगा, तथा जीव से राग के कार्य—पर पदार्थों के कार्य—हों, ऐसी शक्ति आत्मा में नहीं है—ऐसी अनेकांतमय जैनधर्म की नीति है।

परद्रव्य-क्षेत्र-काल, वह कारण तथा (आत्मा में) सम्यग्दर्शनादि शुद्ध पर्याय, वह कार्य—ऐसा नहीं है। देखो, निमित्ताधीन दृष्टि को उड़ा दिया है। भगवान का समवसरण, महाविदेहक्षेत्र, चौथा काल, वज्रवृषभनाराच संहनन (वज्रकाय) इत्यादि बाह्य-सामग्री हो तो आत्मा में धर्मरूपी कार्य होगा, ऐसा नहीं है। व्यवहाररत्नत्रयरूप शुभभाव हो तो आत्मा में वीतरागता प्रगट होगी, ऐसा नहीं है, क्योंकि अकार्यकारणत्व गुण आत्मा में है, किन्तु उससे विरुद्ध कोई गुण आत्मा में नहीं है।

शास्त्र में निमित्त के कथन बहुत आते हैं; ज्ञानी के समीप धर्म श्रवण, जातिस्मरण, देवदर्शन आदि सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति के निमित्तकारण हैं, उसका अर्थ ऐसा है कि भेदज्ञान द्वारा राग से तथा पर से निरपेक्ष निश्चय चैतन्यदेव स्वयं जागृत हो, स्वसन्मुख हो—उस निश्चय सम्यग्दर्शन का नाम देवदर्शन है। जब आत्मा में निश्चयदशारूप कार्य प्रगट किया, तब

वहाँ निमित्त कौन था, यह बताने के लिये उसको व्यवहारसाधन कहा जाता है। निश्चय के बिना व्यवहार किसका ?

प्रश्नः—जिनेन्द्रदेव के दर्शन से निद्धत और निकाचित कर्मों का नाश हो जाता है।—इसका अर्थ भी इसीप्रकार से है कि निमित्त का ज्ञान कराने के लिये यह व्यवहारनय का कथन है; किंतु कोई भी परद्रव्य तेरा कार्य करने के लिये अयोग्य ही है। अनंत बार निमित्तों के समीप में गया; किंतु कार्य क्यों नहीं हुआ ? घातियाकर्मों का उपशम, क्षयोपशम या क्षय, वह कारण है और उसके द्वारा आत्मा में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का कार्य होगा, ऐसा नहीं है। जीव ने ऐसा भाव किया तो उसे निमित्तकारण कहा जाता है। निमित्त निमित्तरूप से है किंतु किसी भी समय में उपादान के कार्य का कारण हो सके, ऐसी उसमें शक्ति नहीं है, तथा उसके द्वारा आत्मा में कार्य हो सके, ऐसा कोई भी गुण आत्मा में नहीं है।

निचली भूमिका में राग होता है, परंतु नवतत्त्वों का विकल्प, सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति का राग, महाव्रत का राग, नयपक्ष आदि का राग है, इसलिये आत्मा में शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र है—ऐसा नहीं है; और भूमिकानुसार ऐसा राग बिल्कुल न हो, मात्र छट्ठे गुणस्थान के योग्य (केवल) वीतरागता ही हो, ऐसा भी नहीं है। अंशतः बाधकदशा है, इसलिये साधकदशा है, ऐसा भी नहीं है। अपूर्ण ज्ञान है, इसलिये राग है, ऐसा नहीं है। यहाँ न्याय से कहा जा रहा है। जैसा वस्तु का स्वरूप है और उसकी जहाँ जो मर्यादा है, उसको जानने की ओर ज्ञान को सम्यक्रूप से ले जाना, उसे न्याय कहते हैं।

वीतरागभाव है, वही मोक्षमार्ग है; उस कार्य की उत्पत्ति के लिये कोई क्षेत्र, संयोग, काल कारण हो सकते हैं, ऐसा नहीं है। शास्त्र में व्यवहार के कथन आते हैं किंतु उसका अर्थ इतना है कि 'उपादान निजगुण जहाँ, तहँ निमित्त पर होय'—ऐसा जानना, वह व्यवहार के ज्ञान का प्रयोजन है।

भगवान श्री अमृतचंद्राचार्य देव कहते हैं कि तुझमें 'अकार्यकारणत्व' नाम का एक गुण ऐसा है कि पर से तेरा कार्य नहीं होता और तू पर का कर्ता नहीं है—स्वामी नहीं है। केवल अभूतार्थनय से निमित्तकर्ता कहना, वह तो कथनमात्र ही है, वस्तुस्वरूप ऐसा नहीं है।

श्री समयसारजी की ११वीं गाथा जिनशासन का प्राण है। उसमें कहा है कि:—

व्यवहारनय अभूतार्थ दर्शित, शुद्धनय भूतार्थ है।
भूतार्थ आश्रित आत्मा, सुदृष्टि निश्चय होय है॥११॥

क्या किसी से किसी अन्य का कार्य नहीं हो सकता? विरोध है—एकांत है, निमित्त-व्यवहार को उड़ाते हैं—ऐसी संयोगी दृष्टिवाले पुकार करते हैं। लेकिन यह सब जो ज्ञेयरूप से है, उसे कौन उड़ा सकता है? शास्त्र में स्पष्ट लिखा है कि अकार्यकारणत्व शक्ति और छ:कारक—कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान और अधिकरण—प्रत्येक द्रव्य में प्रत्येक समय में स्वतंत्र है, इसलिये अन्य कारणों की खोज करने की व्यग्रता व्यर्थ है।

आत्मा में तीनों काल स्वभावरूप अनंत शक्तियाँ हैं। शक्तिवान आत्मा में रागादि विभावभाव नहीं हैं, दया, दान, व्रत, तप, भक्ति का शुभराग आता है, किंतु उसकी मर्यादा आस्रव और बंधतत्त्व में है, संसार ही उसका फल है। शक्तिवान आत्मा में आस्रव है ही नहीं।

स्वभावरूप शुद्धकारण-कार्यशक्ति तुझमें है। यदि तुझमें न हो तो कहाँ से आयेगी? श्री धवल शास्त्र में एक स्थान पर निमित्त-व्यवहार का ज्ञान कराने के लिये ऐसा कथन किया है कि ज्ञानी को शुभभाव से कथंचित् संवर-निर्जरा होती है; छहढाला में आता है कि सत्यार्थ कारण, वह निश्चय है और वहाँ निमित्त बताना, सो व्यवहारकारण है। तथा व्यवहार को निश्चय का कारण कहा है, उसका अर्थ यह है कि—इस भूमिका में इस काल में ऐसा ही निमित्त होता है, इतनी बात सत्य है; किंतु निमित्त से उपादान में कार्य होगा, शुभराग से आत्मा में धीरे-धीरे शुद्धि होगी, यह बात तीनों काल में असत्य है।

यहाँ तो ४७ शक्तियों द्वारा स्पष्ट कह दिया है कि प्रत्येक शक्ति स्वतंत्रता से सुशोभित अखंडित प्रतापसंपदा से परिपूर्ण है, पर के कारण-कार्यपने से रहित है तथा प्रत्येक शक्ति में दूसरी अनंत शक्तियों का भाव (रूप), प्रभुत्व और सामर्थ्य है, वह निश्चय से है। इससे यह सिद्ध होता है कि हे आत्मा! तेरी अनंत शक्तियों का कार्य कारण तुझसे ही है, पर के कारण नहीं है। परद्रव्य, क्षेत्र, काल और परभाव के द्वारा तेरा कोई भी कार्य नहीं होता। प्रथम से ही इस परम सत्य की श्रद्धा करके अनादि की मिथ्या श्रद्धा का त्याग करने की यह बात है।

जो कुछ भी नहीं समझते, ऐसे अज्ञानी जीवों को पहले पुण्य करने का उपदेश देना चाहिये; शुभरागरूप व्यवहार करते-करते धीरे-धीरे निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी कार्य होगा—ऐसी मान्यता मिथ्या है और ऐसा उपदेश सम्यग्दर्शन का नाश करनेवाली विकथा

है। मिथ्या मान्यता के समान दूसरा कोई बड़ा पाप नहीं है—इसकी लोगों को खबर ही नहीं है।

निमित्त तथा व्यवहार उनके स्थान में होते हैं, इसका निषेध नहीं है, तथा उनका ज्ञान कराने के लिये सच्चे निमित्त का, शुभभाव का स्वरूप बतलाया जाता है, किंतु कोई ऐसा मानें कि उसके द्वारा कल्याण हो जायेगा, प्रथम शुभराग करनेयोग्य है तो वे जीव मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी के महापाप का बंध करते हैं। अज्ञानता कोई बचाव नहीं है।

विकथा के पच्चीस प्रकार कहे हैं; किंतु उन शब्दों में विकथा नहीं है; उसप्रकार का बुरा भाव, वह विकथा है। उसमें एक बोल दंसण भेदिनी कथा है, उसे मिथ्यात्वरूपी महापाप को पुष्ट करनेवाली पापकथा कहा है।

श्री समयसारजी गाथा ३ में कहा है कि विश्व के समस्त पदार्थ अपने अपने गुण-पर्याय को ही प्राप्त होकर परिणमन करते हैं। अपने में एकाकार विद्यमान रहते हुए अपने अनंत धर्मों के समूह का स्पर्श करते हैं, तथापि परस्पर एक-दूसरे को स्पर्श नहीं करते, अत्यंत निकट एक आकाशक्षेत्र में विद्यमान हैं, फिर भी अपना अंशमात्र भी स्वरूप नहीं छोड़ते और पररूप परिणमन नहीं करते।

जाग रे जाग, तेरी अनंत चैतन्यऋद्धि, अक्षय गुणों का निधान तेरे स्वाधीन है, तुझमें एकसाथ है, निकट ही है, उसको देख। जड़कर्म और रागादि आत्मा को स्पर्श नहीं कर सकते। आत्मा नित्य अरूपी है, वह जड़ शरीर को स्पर्श नहीं करता। सभी पदार्थ अपने में, अपने द्वारा, अपना कार्य अपने आधार से, अपने से ही करते हैं। अन्य का आश्रय करना, अन्य कारकों की अपेक्षा मानना, अपने से भिन्न पदार्थ की आवश्यकता मानना, वह व्यर्थ खेल है।

प्रत्येक के अपने स्वतन्त्र कारण-कार्य हैं। स्वरूप के लक्ष से इतना निःसंदेह निर्णय करे तो—'मैं पर का करूँ, पर मेरा करे, मैं दूसरे को निमित्त बनूँ तो उसके कार्य होंगे' इस मिथ्या अहंकार की महान आकुलता नष्ट होकर, त्रिकाली ज्ञातास्वभाव की दृष्टि सहित सच्ची समता प्रगट होती है।

तीन काल और तीन लोक में प्रत्येक द्रव्य की स्वतंत्रता को देखनेवाले सर्वज्ञ भगवान फरमाते हैं कि एक द्रव्य में दूसरे द्रव्य का अत्यंत अभाव है। स्वचतुष्टय में परचतुष्टय किसी प्रकार से नहीं है। जो जिसमें नहीं है, वह उसका क्या कर सकता है? कुछ भी नहीं कर सकता। इसलिये कोई भी द्रव्य किसी भी प्रकार से दूसरे को स्पर्श नहीं कर सकता। तेरा काम

तुझ में है, तेरे आधीन है—ऐसा द्रव्य-गुण-पर्याय का स्वतन्त्र स्वभाव तीनों काल है। सत्यस्वरूप का ज्ञान नहीं है, सत्य को समझना भी नहीं है और धर्म तो करना है। क्या धर्म पर में से आता है ?

वर्तमान की चतुराई से पैसे की प्राप्ति नहीं होती। चतुराई की पर्याय जीव में जीव के आधार से होती है और रुपयों की जाने आने की या रुकने की पर्याय जड़ में जड़ के आधार से होती है।

अकारणकार्यत्व शक्ति आत्मा में तथा उसके गुण-पर्याय में व्याप्त है; उसमें 'कोई कार्य किसी अन्य से नहीं किया जा सकता।' इन शब्दों में महान मर्मरूप सिद्धांत भरा है। विश्व के समस्त द्रव्यों की स्वतंत्रता ऐसा बतलाती है कि—एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का न तो कुछ कर सकता है और न करा सकता है; ऐसा गुण आत्मा की अनंत शक्ति का रूप (स्वसामर्थ्य) धारण करके विद्यमान है।

अपना मोक्षमार्गरूपी कार्य देव-शास्त्र-गुरु और समवसरण में नहीं है, उनके द्वारा तेरा कार्य नहीं होता। दर्शनमोह का क्षय अपने द्रव्यस्वभाव का अवलंबन लेने से होता है। अपने में ऐसा यथार्थ प्रयत्न करे तो केवली, श्रुतकेवली को निमित्त कहा जाता है। निमित्त है, इसलिये उपादान में कार्य हुआ-ऐसा नहीं है। पर को कारण कहना, वह उपचार है, व्यवहार है, इसलिये वह सच्चा कारण नहीं है। अनंत गुण संपन्न स्वद्रव्य के ऊपर दृष्टि देने से शुद्ध पर्यायरूपी कार्य प्रगट होता है, ऐसी शक्ति आत्मा में है; लेकिन पर का तथा राग का कारण-कार्य बने, ऐसी कोई शक्ति आत्मा में नहीं है। शुभराग कारण, व्यवहाररत्नत्रय कारण और निश्चयरत्नत्रय कार्य—ऐसा आत्मा में नहीं है। अहो! यह तेरे स्वाधीनता की आश्चर्यजनक महिमा है। यदि मुक्ति के उपाय के प्रारंभ में ही स्वाधीनता की श्रद्धा और यथार्थ पुरुषार्थ न हो तो उसे मुक्ति का क्या स्वरूप है, स्वतंत्रता का स्वरूप क्या है, हित का ग्रहण और अहित का त्याग किसे कहते हैं, सर्वज्ञ वीतरागदेव ने क्या कहा?—उसका कुछ भी ज्ञान नहीं है। संयोगीदृष्टिवाला स्वतंत्रता को स्वीकार नहीं कर सकता। आत्मा की इच्छा से शरीर चले, शुभराग से वीतरागता हो—ऐसी कोई शक्ति आत्मा में नहीं है।

शरीर की क्रिया हो, सामने पदार्थ हो, इंद्रियाँ हों, प्रकाश हो, तो आत्मा को ज्ञान होता है—ऐसा नहीं है। पूर्व की पर्याय कारण तथा वर्तमान पर्याय उसका कार्य—ऐसा नहीं है।

पर्याय में से पर्याय नहीं आती, परपदार्थ कारण और सम्यग्दर्शन कार्य—ऐसा नहीं है। परद्रव्य, क्षेत्र, काल, तथा परभाव कारण और आत्मा में शुद्धता या अशुद्धता प्रगट होना वह कार्य—ऐसा नहीं है। व्यवहार श्रद्धा-ज्ञान-चारित्ररूप शुभराग कारण तथा निश्चयरत्नत्रय कार्य—ऐसा कारण-कार्य आत्मा में तीनों काल में नहीं है। पहले व्यवहार, बाद में निश्चय-ऐसा नहीं है। लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आ जाये—ऐसा नहीं बनता, उसीप्रकार राग करते-करते वीतरागता हो जाये—ऐसा नहीं बनता।

मैं एक समय में अनंत शक्तियों का भंडार परिपूर्ण ज्ञानघन हूँ, उसमें दृष्टि देने से आत्मा ही कारण और उसकी शुद्धपर्याय कार्यरूप प्रगट होती है—ऐसी शक्ति आत्मा में है; किन्तु अपनी पर्याय कारण और शरीरादि परपदार्थों में हलन-चलन आदि फेरफार हो, एक जीव के कारण दूसरे की पर्याय उत्पन्न हो जाए—ऐसा कोई गुण आत्मा में नहीं है। अपने से ही अपने आधार से अपना कार्य होता है, पर से अपना कुछ भी न हो और स्वयं पर का कुछ भी करने के लिये समर्थ न हो सके—ऐसी शक्ति आत्मा में है। इससे ऐसा समझना कि आत्मा का तीनों काल परवस्तु के बिना ही चल रहा है, अपने कार्य के लिये परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल तथा परभाव की आवश्यकता पड़े—ऐसा आत्मा का स्वरूप नहीं है। तथापि उससे विपरीत माने तो उसका मिथ्या अभिप्राय ही अनंत दुःखरूप संसार का कारण बनता है। जहाँ मिथ्यात्व है, वहाँ पराश्रय की और राग की रुचि होती ही है, इसलिये उसको किसी भी प्रकार से राग का अभाव नहीं होता। अभिप्राय में निरंतर तीव्र राग-द्वेष होते हैं, इसप्रकार युक्ति से, परीक्षा द्वारा वस्तु की मर्यादा को जानकर, पर के साथ मेरा किसी भी प्रकार से कारण-कार्य नहीं है। मैं तो पर से भिन्न और अपनी अनंत शक्तियों से अभिन्न हूँ—इसप्रकार निर्णय करके पर में कर्तृत्व-भोक्तृत्व और स्वामित्व की श्रद्धा छोड़कर सर्वथा राग की उपेक्षा करनेवाले ज्ञायकस्वभाव-सन्मुख दृष्टि करना, स्वसंवेदन ज्ञान और निजस्वरूप में लीनता करना ही सुखी होने का सच्चा उपाय है।

आचार्यदेव ने कहा कि सुखी होने के लिये बाह्य साधनों को मिलाने की व्यग्रता से जीव व्यर्थ ही परतंत्र होते हैं। परतंत्र होने की कुछ भी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि प्रत्येक आत्मा में अकार्यकारणत्वशक्ति सदा ही विद्यमान है, जिससे अपने कार्य के लिये अन्य कारणों की अपेक्षा नहीं है, आत्मा पर का कारण बने तो परद्रव्य परिणमन करेगा, ऐसा भी नहीं है। प्रत्येक आत्मा सच्चिदानंद प्रभु देह से भिन्न है। मन, वाणी, शुभाशुभ विकल्पों से रहित और ज्ञानानंद से

परिपूर्ण हूँ—इसप्रकार सम्यग्दृष्टि की दृष्टि शक्तिवान चैतन्यद्रव्य के ऊपर पड़ी है, वह दृष्टि स्वरूप को स्वतंत्र तथा अनंत शक्तियों के भंडाररूप अवलोकन करती है।

द्रव्य अर्थात् अनंत गुणों का पिंड, संख्या अपेक्षा से अपनी अनंत शक्तियों से (गुणों से) परिपूर्ण यह पदार्थ है और प्रत्येक समय में द्रव्य के आश्रय से अनंत गुणों की अनंत पर्यायें प्रगट होती हैं। गुण प्रगट नहीं होते। गुण सामान्य एकरूप नित्य रहते हैं, उनके विशेषरूप कार्य को पर्याय कहते हैं, वे अपने से हैं; और परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल तथा परभाव से नहीं हैं, पर के कारणकार्यरूप से नहीं हैं। सम्यग्दृष्टि जीव प्रारंभ से ही स्व-पर को इसप्रकार से स्वतंत्र जानता है तथा अपनी अकारणकार्यत्व आदि अनंत शक्तियों को धारण करनेवाले अपने आत्मद्रव्य को अपनेरूप से मानता है, उसी को उत्कृष्ट ध्रुव और शरणरूप मानता है। स्वद्रव्य को कारण बनाने से उसका शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान-आनंदरूप कार्य प्रगट होने लगता है, किसी संयोग या शुभ विकल्प—व्यवहार को कारण बनाये तो शुद्धता प्रगट होगी, ऐसा नहीं है।

जैसे सुवर्ण सुवर्णरूप से है, अन्य धातुरूप से नहीं। सुवर्ण में पीलापन, चिकनापन और वजन आदि एक ही साथ है; उसीप्रकार एक सेकेंड के असंख्यवें भाग में अर्थात् एक समय में अनंतानंत गुणों का समूह प्रत्येक आत्मा में अनादि-अनंत एकसाथ हैं, इसलिये उसका आदि और अंत नहीं है; उसमें रही हुई अकार्यकारणत्वशक्ति ऐसा बतलाती है कि—आत्मा में ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, स्वच्छता, प्रभुता आदि गुण और उनकी विकासरूप पर्यायें प्रत्येक समय में उत्पाद-व्ययरूप उनसे ही हुआ करती हैं। जो हैं, वे उन्हीं से किये जा सकते हैं, इसलिये परद्रव्य, परक्षेत्र, परकालादि द्वारा नहीं किये जा सकते। ज्ञानी को निचली भूमिका में राग होता है, किन्तु उस शुभराग से आत्मा के गुण की पर्याय का उत्पन्न होना-वृद्धि होना या ध्रुवरूप से रहना, ऐसा नहीं बनता। आत्मा स्वयं निज शक्ति से अखंड, अभेद है, उसके आश्रय से, स्वसन्मुखतारूप पुरुषार्थ से भूमिकानुसार निर्विकल्प वीतरागभावरूप से अनंत गुणों की पर्यायों का उत्पाद प्रत्येक समय में हुआ ही करता है; उसका अस्तित्व, उत्पन्न होना, बदलना तथा ध्रुवरूप से रहना, आत्मद्रव्य के आश्रय से ही है, पर के आश्रय से नहीं है।

व्यवहार के (-शुभराग के) आश्रय से भी अपने उत्पाद-व्यय-ध्रुव अथवा वीतराग भाव त्रिकाल में नहीं होते। राग तो चैतन्य की जागृति को रोकनेवाला विपरीत भाव है, आस्रव है। आस्रव तो बंध का ही कारण है; बंध का कारण, वह मोक्ष का नहीं हो सकता। इस पर से

सिद्ध होता है कि व्यवहार के आश्रय से किसी का शुद्धतारूप कार्य होता ही नहीं। व्यवहार साधन तथा निश्चय साध्य, ऐसा कथन आये तो वहाँ ऐसा समझना कि इसका अर्थ ऐसा नहीं है किंतु स्वद्रव्य के आश्रय से वीतरागता प्रगट होती है, तब वहाँ पर निमित्तरूप से किसप्रकार का राग था, उससे विरुद्ध प्रकारका राग निमित्तरूप से नहीं था, यह बताने के लिये उसको व्यवहार साधन कहा जाता है तथा इसप्रकार के रागरूप निमित्त का अभाव करके जीव वीतरागता प्रगट करता है, ऐसा बताने के लिये उसप्रकार के शुभराग को, व्यवहाररत्नत्रय को परंपरा मोक्ष का कारण कहा जाता है, किंतु वास्तव में राग, वह वीतरागता का सच्चा कारण नहीं हो सकता—ऐसा प्रथम से ही निर्णय करना चाहिये।

जैसे लैंडी पीपल में परिपूर्ण चरपराहट और हरा रंग प्रगट होने की योग्यता शक्तिरूप से विद्यमान है, उसे घिसने पर चरपराहट का प्रगट अनुभव होता है, उसीप्रकार आत्मा में अनादि-अनंत अनंतगुण हैं, उनके साथ ही अकारणकार्यशक्ति भी द्रव्य में, गुण में और पर्याय में व्याप्त है; उसकी स्वाधीनता की दृष्टि, स्वाधीनता का ज्ञान और आचरण न करके पराश्रय की रुचि रखकर अनंत बार द्रव्यलिंगी मुनि हुआ, उससे क्या हुआ ?

'द्रव्य संयम से ग्रैवेयक पायो, फेर पीछो पटक्यो।' अकेले शुभ में-पुण्य में अधिक समय तक कोई जीव रहता ही नहीं है, पुण्य के बाद पाप आता ही है।

शास्त्र पढ़े, हजारों लोगों को उपदेश दिया, किंतु अंतर में अपनी अविनाशी चैतन्य ऋद्धि और अनंत स्वाधीन शक्ति की महिमा का स्वीकार नहीं किया, इसलिये चौरासी के अवतार विद्यमान हैं।

अहो! अन्य किसी से तेरा कोई भी कार्य नहीं होता, और न तू किसी के लिये कारण है—यह संक्षिप्त महान मंत्र है। सम्यग्दर्शनादि कार्य तेरे स्वद्रव्य के आश्रय से प्रगट होते हैं। आत्मद्रव्य स्वयं ही कारणपरमात्मा है, उसके ऊपर दृष्टि करे तो शुद्ध सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की दशा प्रगट होती है। तीनों काल इसीप्रकार शुद्धिरूपी कार्य का उत्पन्न होना, वृद्धि होना और टिकना स्वद्रव्य के आश्रय से ही होता है; राग से या निमित्त से नहीं होता। इस बात का सर्व प्रथम निर्णय करना चाहिये। परीक्षा किये बिना परपद में अपना भला-बुरा मानकर दु:खी होता है। दु:खी होने के उपाय को भ्रान्ति से सुख का उपाय मान लेता है... जो भूल को समझेगा, वह उसे दूर कर सकता है। भूल अर्थात् अशुद्धतारूपी कार्य, आत्मद्रव्य के आश्रय से नहीं होता;

इसलिये अशुद्धतारूपी कार्य को आत्मद्रव्य का कार्य कहते ही नहीं हैं। यहाँ पर द्रव्यदृष्टि से आत्मद्रव्य का वर्णन चलता है। द्रव्यदृष्टि, सो सम्यग्दृष्टि, अर्थात् पुण्य-पाप की रुचि को छोड़कर अनंत गुणों को धारण करनेवाला मैं आत्मद्रव्य हूँ, उसमें एकमेकपने की दृष्टि देने से ज्ञान-दर्शनादि तथा अकार्यकारणत्वशक्ति अपने द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों में व्यापती है, उसमें अन्य कारण नहीं है। व्यवहार कारण और निश्चय कार्य—ऐसा नहीं है। निश्चयरत्नत्रय तो शुद्धभाव है। वह अन्य के द्वारा किया जाये—ऐसा भाव नहीं है। शुद्ध पर्यायरूपी कार्य का मैं कर्ता तथा वह मेरा कार्य है, किंतु शुभराग से वह कार्य होता है, ऐसा कोई गुण आत्मा में नहीं है तथा आत्मा, राग की उत्पत्ति में कारण हो—ऐसा कोई भी गुण आत्मा में नहीं है। यदि ऐसा गुण हो तो रागादि कभी भी दूर होंगे ही नहीं।

क्या पर को कारण मानना ही नहीं ? यह सूक्ष्म बात है। व्यवहार कारण तो कथनमात्र कारण है, सच्चा कारण नहीं है। वास्तव में जो निमित्त से कार्य होना मानता है, वह निमित्त को निमित्तरूप से न मानकर उसी को निश्चय, उपादान मानता है, जो दो द्रव्यों को एक माननेरूप मिथ्यात्व है।

जीव को अपनी पर्याय में जब तक पूर्ण वीतरागता की प्राप्ति नहीं होती, तब तक दया, दान, व्रतादि का शुभराग भी आता है; किंतु किसी भी प्रकार का राग आत्मा में शुद्धिरूपी कार्य का कारण हो सके, ऐसा गुण (ऐसी शक्ति) राग में नहीं है; और शुभराग से अर्थात् व्यवहाररत्नत्रय से आत्मा में निश्चयरत्नत्रयरूपी कार्य हो, ऐसा कोई गुण आत्मा में नहीं है। पुण्य से, भक्ति आदि के शुभराग से, व्यवहार से, भगवान की मूर्ति से, अथवा साक्षात् तीर्थंकर भगवान के दर्शन से—वाणी से आत्मा को शांति या भेदज्ञान की प्राप्ति हो जाए, ऐसा कोई गुण किसी भी आत्मा में नहीं है। अहो! ऐसी स्पष्ट बात सुनकर राग की रुचिवाले पुकार करेंगे, लेकिन अरे प्रभु!.... सुन, तुझमें पूर्ण सामर्थ्य सहित अकार्यकारणत्व नाम का गुण है, वह यह प्रसिद्ध करता है कि अन्य से तेरा कोई कार्य किंचित् भी नहीं हो सकता। पर से मेरा कार्य और मुझसे पर का कार्य होता ही नहीं; किन्तु स्व से ही स्व का कार्य होता है—यह त्रिकाल अबाधित नियम है। संयोग में एकताबुद्धि से देखनेवाला दो द्रव्यों की स्वतंत्रता को स्वीकार नहीं कर सकता। प्रत्येक द्रव्य स्वशक्ति से ही ध्रुव रहकर उसकी पर्याय के कारणकार्यभाव द्वारा नवीन-नवीन पर्यायरूप कार्य को करता है। यदि तुझमें पर के कार्य का कारण बनने की शक्ति

हो तो सदा उसके कार्य में तुझे वहाँ उपस्थित रहना पड़ेगा; और पर से तथा राग से तेरा कार्य होता है—यह बात सत्य हो तो पर का संयोग और राग तेरे किसी भी कार्य से कभी भी पृथक् नहीं हो सकते।

यदि व्यवहार से निश्चयधर्म प्रगट हो तो सदा व्यवहार का लक्ष्य रखकर संसार में रुकना पड़ेगा और स्वलक्ष्य—स्वसन्मुख होने का अवसर ही नहीं रहेगा, इसलिये एक ही सिद्धांत सत्य सिद्ध होता है कि भेदज्ञानपूर्वक मेरे अखंड ज्ञानानंदस्वरूपी स्वद्रवय में एकाग्र होने से, स्व का आश्रय करने से ही सम्यग्दर्शनादि शुद्धिरूपी कार्य प्रगट होता है।

पराश्रय करते-करते स्वाश्रयरूपी वीतरागता की उत्पत्ति होती हो तो वह तो अनंत काल से करता आया है, तो फिर सवसन्मुख होने का क्या प्रयोजन है? परलक्ष्य से, परद्रव्य के अवलंबन से तो संकल्प-विकल्प की उत्पत्ति होती है, वह तो राग है। राग के लक्ष्य से अंतर में एकाग्रदृष्टि होती ही नहीं। जब तक व्यवहार से, निमित्त के आश्रय से कार्य होना मानता है, तब तक त्रिकाली स्वभाव में राग-व्यवहार नहीं है तथा स्वाश्रय से ही लाभ होता है, ऐसी यथार्थ दृष्टि नहीं होती।

अकार्यकारणत्व गुण यह प्रसिद्ध करता है कि राग से तथा निमित्त से तेरा कार्य नहीं होता; यदि होता हो तो राग और निमित्तों का आश्रय करनेरूप कार्य को जीव छोड़े ही नहीं, किंतु अनंत ज्ञानी महापुरुष शुद्धनिश्चयनय के विषयरूप एक शुद्धात्मा में ही लीन होकर स्वाश्रय से ही मुक्ति के सुख को प्राप्त हुए हैं।

जो ऐसा मानता है कि मैं परद्रव्य के कार्य में कारण हूँ, वह अपने अभिप्राय में तीनों काल के अनंत परद्रव्यों के कार्यों में मैं कारण हूँ, ऐसा मानता है, इसलिये उसको पर का संग कभी छूटेगा ही नहीं।

प्रत्येक वस्तु अपने अनंत गुणों से ध्रुव रहकर प्रत्येक समय में नवीन-नवीन पर्याय उत्पन्न करती है—उत्पाद-व्यय और ध्रुवरूप से स्वयं ही वर्तती है। यदि पर के कारण उत्पाद-व्यय होते हों तो पर के संबंध से छूट सकेगा नहीं, तथा स्वभाव में एकाग्रता भी नहीं कर सकता। राग मेरा कार्य है—ऐसा जो मानता है, वह राग की रुचि में पड़ा है; राग मेरा कारण और शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान मेरा कार्य अथवा राग-द्वेष-मोहभाव का मैं कारण—ऐसी मान्यतावाला संसार में परिभ्रमण करता ही रहेगा।

आत्मद्रव्य तो त्रिकाल अनंत अविकारी गुणों का पिंड है, उसमें एक अंश भी आस्रव-मलिनता का प्रवेश नहीं है, उसका ग्रहण-त्याग नहीं है—ऐसा निर्णय करे, तभी भावभासन सहित शुद्धात्मानुभवरूप सम्यग्दर्शन होगा।

आत्मा वीतरागता में कारण है और राग में कारण नहीं है—इसका नाम अनेकांत है। अपने दोष से क्षणिक पर्याय में राग होता है, किंतु ज्ञानी उसे आत्मा का कार्य मानते ही नहीं, क्योंकि आत्मा विकारी और विकार जितना नहीं है। आस्रव और उसके कारण-कार्य को जीवतत्त्व नहीं माना गया। आत्मद्रव्य राग में कारण हो, या राग का (व्यवहाररत्नत्रय का) कारण हो तो राग करने का उसका स्वभाव सिद्ध हुआ, जो कभी भी नहीं छूट सकता। वस्तु एक समय में परिपूर्ण है। अबंध परिणामी आत्मा राग को और बंध को कभी स्पर्शता ही नहीं है; यदि राग को और बंध को स्पर्श करे तो आत्मा और आस्रव दो तत्त्व भिन्न सिद्ध नहीं होते।

सम्यग्दृष्टि जीव की दृष्टि मात्र स्वभाव के ऊपर होने से अपने को नये कर्म के बंधनरूपी कार्य का मैं कारण हूँ, पर की क्रिया का मैं निमित्तकर्ता हूँ—ऐसा नहीं मानता। जीव पर के कार्य का निमित्तकर्ता हो तो परद्रव्यों के कार्यों के समय उसको उपस्थित रहना ही पड़ेगा, तथा वह वहाँ से नहीं छूट सकेगा। आत्मद्रव्य राग का कारण हो तो वह राग से नहीं छूट सकेगा, ऐसा जाने, तभी ४७ शक्तियाँ तथा ऐसी अनंत शक्तियों को धारण करनेवाले आत्मा में दृष्टि करके अपूर्व अनुभव कर सकेगा।

अहो! अपूर्व कार्य क्या है, सत्य क्या है, द्रव्य, गुण, पर्याय तथा उनकी स्वतंत्रता किसप्रकार से है, यह कभी सुना ही नहीं। सर्वज्ञ भगवान के कथनानुसार मिथ्यात्वादि आस्रव तत्त्व क्या है तथा उससे रहित आत्मतत्त्व क्या है, ज्ञातापना क्या है—इन बातों को अज्ञानी जीवों ने अनंत काल में कभी लक्ष्य में लिया ही नहीं। कहा है कि—

दौड़त दौड़त दौड़त दोड़ियो, जेती मननी दौड़ जिनेश्वर,
प्रेम प्रतीत विचारो ढूँकड़ी, गुरुगम लेजो जोड़ जिनेश्वर,
धर्म जिनेश्वर गाऊँ रग शुं।

जब तक अपनी दृष्टि संयोग और पुण्य-पाप में पड़ी है, तब तक अपनी कल्पना द्वारा पर से लाभ और हानि मानता है। परंतु सत्य-असत्य का निर्णय करके अपूर्व वस्तु अपने में ही है, स्वाश्रय करना ही मुक्ति का उपाय है—ऐसी दृढ़ता न करे तो उसने गुरु को पहिचाना ही नहीं

है, तथा उसने वीतरागदेव की आज्ञा नहीं मानी है। देव, शास्त्र, गुरु ये परपदार्थ हैं, वे तेरे कार्य के कारण नहीं हो सकते तथा तुझमें ऐसी शक्ति नहीं है कि परद्रव्य के कारण तेरा कार्य हो जाये।

चैतन्यद्रव्य में अनादि-अनंत अनंत गुण विद्यमान हैं, जो द्रव्य के संपूर्ण भाग में और तीनों काल की संपूर्ण अवस्थाओं में रहते हैं, उसमें स्वयं कारण-कार्यरूप से होना, पर से न होना, पर के आधीन कभी न होना, ऐसा गुण है और पर के लिये निमित्तकारण हो सके, पर से-राग से उसका कार्य हो सके, ऐसा गुण आत्मा में नहीं है। इस बात को अनेकांत प्रमाण से निमित्त करे, तभी पराश्रय से छूटकर स्वाश्रयरूप धर्म अर्थात् सुखी होने का उपाय कर सकता है।

श्री समयसारजी गाथा १०५ में यह बात आयी है कि आत्मा में कर्मबंध में निमित्त होने का स्वभाव ही नहीं है, यदि हो तो छूट नहीं सकता, राग की उत्पत्ति करने का जीव का स्वभाव हो तो वह भी छूट नहीं सकता। भूमिकानुसार योग्य शुभराग होता अवश्य है, लेकिन शुभराग है, इसलिये चौथे-पाँचवें-छठे-सातवें गुणस्थानों में वीतरागता है, ऐसा नहीं है। पर के कारण, राग के आश्रय से, व्यवहार के आलंबन से वीतरागता का अर्थात् शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र का उत्पन्न होना, वृद्धि होना या टिकना नहीं है—ऐसा अकार्यकारणत्वशक्ति प्रसिद्ध करती है।

तेरा वीतरागविज्ञानघन स्वभाव है। जैसे लैंडी पीपल में पूर्ण शक्ति थी, वह प्रगट हुई है, उसीप्रकार तुझमें पूर्ण सामर्थ्य से भरपूर अनंत गुण सदा भरे पड़े हैं। जो हैं, उसमें एकत्व की दृष्टि करके स्वसन्मुख हो तो सम्यक् भावश्रुतज्ञान में तेरा सच्चा स्वरूप लक्ष्य में आ जायेगा। ध्रुव ध्येय प्राप्त करने की दृष्टि होने पर दृष्टि में से संसारबंधन छूट जाता है। इसप्रकार स्वाश्रय से ही जन्म-मरण तथा औपाधिकभावों का नाश होकर शक्ति में जो शुद्धता थी, वह प्राप्त होती है।

पर के कार्यों में निमित्तकर्ता की दृष्टिवाले को राग और विकार की रुचि रहती ही है, इसलिये उसे ज्ञातास्वभाव का अनादर और पर में कर्तृत्व का आदर है। इसलिये उसके फलस्वरूप एकेन्द्रिय निगोद में उसे (निमित्तकर्त्ता को) जाना ही पड़ेगा, क्योंकि वस्तुस्वरूप जैसा है, वैसा न मानकर विरुद्ध ही मानता है, वह सर्वज्ञ को तथा उनकी वाणी के अर्थ को भी नहीं मानता। सत्य के विरोध का फल एकेन्द्रिय पशुपद है; किंतु आत्मा के स्वभाव में ऐसा पद है ही नहीं तथा उसके कारणरूप गुण भी नहीं है। आत्मा में प्रमाण-प्रमेय शक्ति है, परंतु किसी के साथ कारण-कार्यरूप होने की शक्ति नहीं है; पर के कारण-कार्य के लिये प्रत्येक द्रव्य, गुण तथा उसकी पर्याय अयोग्य हैं, लायक नहीं हैं। श्री समयसारजी गाथा ३७२ तथा उसकी टीका में यह बात आचार्यदेव ने अत्यंत स्पष्ट कही है।

सम्यग्दृष्टि जीव ऐसा मानता है कि कर्मबंध में मेरा निमित्तपना नहीं है, वर्तमान में चारित्र का अल्प दोष है, किंतु वह स्वाश्रय की दृष्टि का कार्य नहीं है। चैतन्यस्वरूप जीवद्रव्य का कार्य रागादि आस्रव नहीं है, कारण कि—आस्रव का कार्य निश्चय से पर में जाता है।

अहो! तुझमें चैतन्य सामर्थ्य को सुशोभित करें, ऐसी अनंत शक्तियाँ, प्रतापवंत ऐसे स्वद्रव्य के आश्रय से भरी पड़ी हैं। ऐसे स्वद्रव्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप शुद्धपर्यायरूपी कार्य प्रगट होता है। परमार्थ का पंथ तीनों काल में एक ही प्रकार का होता है। यह तो अमृत परोसा जा रहा है। यह कठिन तथा उच्च भूमिका की बात नहीं है। समझने की योग्यतावाले चैतन्य को ही आचार्यदेव ने आत्मऋद्धि बतायी है। इसी का आदर, आश्रय, महिमा करे तो पराश्रय की पामरता छूट जायेगी।

अहो! चैतन्य..... तेरी ऋद्धि तुझमें ही है। अनंत, अपार ज्ञानानंद का भंडार तुझमें सदा विद्यमान है।

''ज्यां चेतन त्यां सकल गुण केवली बोले अेम,
प्रगट अनुभव स्वरूपनो निर्मल करो सप्रेम रे,
चैतन्यप्रभु, प्रभुता तारी रे चैतन्य धाममां।''

प्रत्येक आत्मा असंख्यप्रदेशी है। उसका सच्चा स्वरूप शरीर से, राग से, पुण्य से-व्यवहाररत्नत्रय से भिन्न है। ज्ञानानंदस्वभाव से तू अस्तिरूप है तथा तुझमें व्यवहार, निमित्त, पुण्य-पाप की नास्ति है, ऐसे स्वतंत्र अस्ति-नास्ति स्वभाव के कारण तू सदा स्वतंत्र है।

प्रत्येक आत्मा की अनंत गुण संपन्न प्रभुता शुद्ध है, उसमें एकत्व की दृष्टि करके, उसमें ही शुद्ध प्रेम करो। व्यवहार, निमित्त उनके स्थान में होते हैं, किन्तु उनकी रुचि छोड़े, तभी पूर्ण स्वभाव के लक्ष्य से पूर्ण स्वरूप की रुचि और सम्यग्दर्शन होगा। अन्य किसी भी प्रकार दुःख से मुक्त हुआ नहीं जा सकता। बाह्य में, पुण्य में, देह की क्रिया में, राग में अंशमात्र भी चैतन्य का अस्तित्व नहीं है। बाह्य में तो हो-हा, मान-बड़ाई तथा काम भोग बंधन की बात ही सुनने में आयेगी।

अरे, भगवान आत्मा! तू पर के कारण-कार्यरूप से नहीं है। यह बहुत ही सुगम सिद्धांत है। समयसारजी में ४७ शक्तियों का वर्णन करके ४७ कर्म-प्रकृतियों का नाश तथा सर्वज्ञपद को प्राप्त करने का उपाय बतला दिया है। भेदज्ञान द्वारा प्रथम से ही श्रद्धा में सर्वप्रकार के राग का

त्याग और सर्वज्ञ-वीतरागस्वभाव का आदर करने की यह बात है। राग होने पर भी ज्ञानी उसे हेयरूप से जानता है। जो किसी भी प्रकार के राग को हितकर मानता है, परद्रव्य से लाभ-हानि का होना मानता है, मैं पर का कार्य कर सकता हूँ—ऐसा मानता है, उसे आत्मा की एक भी शक्ति की प्रतीति नहीं है।

अरे प्रभु, एक बार स्वतंत्रता की श्रद्धा तो कर! मेरा आत्मा राग का कारण नहीं तथा राग के कारण से, निमित्त से शुद्धतारूपी कार्य हो जाये, ऐसा कोई गुण मुझमें नहीं है। जो राग से, निमित्त से लाभ मानता है, उसे सम्यग्दर्शन नहीं है; सम्यग्दर्शन के बिना व्रत, चारित्र, निश्चय या व्यवहार कुछ भी नहीं होता।

अनंत काल के बाद बड़ी कठिनाई से इस अत्यंत दुर्लभ अवसर में सत्य स्वरूप श्रवण करने को मिलता है, तथापि उसकी उपेक्षा करता है कि यह तो निश्चयनय का कथन है। धर्म के नाम से बाह्य में खूब धन खर्च करे किंतु व्याख्यान सुनते समय निद्रा आवे तो वह सत्य-असत्य का निश्चय कैसे करेगा? और अंतर में स्वसन्मुख होकर यथार्थ परिणमन भी कैसे करेगा?

आत्मा आदि छहों द्रव्य तथा प्रत्येक द्रव्य के गुण-पर्याय पर के द्वारा किये हुये नहीं हैं, परंतु अकृत्रिम हैं। है, उसे कौन बना सकता है? पर्याय तो नयी होती है, उस कार्य का नियामक कोई जड़ कर्म या भगवान कर्ता है? नहीं, क्योंकि वस्तु अनादि-अनंत स्वयंसिद्ध है, तथा उसकी शक्तियाँ भी अनादि-अनंत स्वयंसिद्ध हैं। प्रत्येक समय में अनंत गुणों की पर्यायें उत्पाद-व्ययरूप से बदलती ही रहती हैं, इसलिये कहा है कि वस्तु की शक्ति किसी अन्य कारणों की अपेक्षा रखती ही नहीं। अन्य को कारण कहना, वह तो निमित्त बताने के लिये व्यवहारकथन है।

वास्तव में द्रव्य-गुण-पर्याय—यह तीनों प्रत्येक द्रव्य में अपने सत्पने से ही हैं; पर से, राग से नहीं हैं। इसलिये जीव में भी चाहे उसकी पर्याय अशुद्ध हो या शुद्ध हो, उसका कर्ता उसके साथ तन्मय रहनेवाला द्रव्य ही है। उसका कर्ता कोई ईश्वर अथवा जड़कर्म नहीं हैं। अन्यमती ईश्वर, ब्रह्मा, विधाता को कर्ता मानते हैं; उसीप्रकार जैन नाम धारण करके अपने को पर के कार्य का निमित्तकर्ता माने, जड़-कर्म जीव को रागद्वेष, सुख-दुःख कराता है, ऐसा माने वह भी प्रत्येक द्रव्य की स्वतंत्रता का नाश करनेवाला मिथ्यादृष्टि है। अशुद्ध दृष्टि से वह मात्र अपने में मिथ्या मान्यता का कर्ता हो सकता है, किंतु पर का कर्ता तो तीन काल और तीन लोक में भी नहीं हो सकता।

यदि निमित्त से कार्य होता हो तो साक्षात् परमात्मा तीर्थंकरदेव के पास समवसरण में (धर्मसभा में) गया, वहाँ सच्चा ज्ञान क्यों नहीं हुआ ? क्या भगवान के पास किसी का कल्याण रखा है कि वे दे दें ? सर्वज्ञदेव आत्मा को हाथ में पकड़कर समझायें, ऐसा नहीं है। यदि सर्वज्ञ भगवान से कल्याण होता हो तो एक ज्ञानी सभी का कल्याण कर देगा, किन्तु ऐसा कभी बनता ही नहीं। भगवान तो प्रत्यक्ष अपने ज्ञान द्वारा देखकर कहते हैं कि तू मेरे जैसी परिपूर्ण अमर्यादित शक्ति का स्वामी है। तुझमें अकार्यकारणत्वशक्ति विद्यमान है, वह प्रत्येक समय में तेरी स्वतंत्रता दिखलाती है। देव, शास्त्र, गुरु और शरीर सभी परद्रव्य हैं। क्षायिक सम्यक्त्व-श्रद्धागुण की पर्याय तेरे कारण से उत्पन्न होती है, परद्रव्य के कारण से नहीं। रागरूपी कार्य में सम्यग्दर्शन कारण नहीं है। स्वद्रव्य के अवलंबन के अनुसार जितनी वीतराग परिणति प्रगट हुई, वह भी राग की क्रिया का कारण नहीं है, अन्य तो निमित्तमात्र ही है। उपादान और निमित्त के झगड़े अज्ञानता से ही उत्पन्न होते हैं। वस्तु की कोई भी शक्ति अन्य कारणों की अपेक्षा नहीं रखती, तथा अन्य का कार्य करे, ऐसी शक्ति (योग्यता) वस्तु में नहीं है। ऐसा निर्णय करे, तभी स्वद्रव्य को पहिचान सकेगा और स्वाश्रितदृष्टि से ही सम्यग्दर्शन होगा। शुद्ध पर्यायरूपी कार्य स्वद्रव्य से ही होता है; शरीर से, मन, विकल्प या वाणी से नहीं होता, ऐसी स्वतंत्र वस्तुस्थिति लक्ष्य में न आये तो सम्यग्दर्शन नहीं होगा।

स्वतंत्रता से सुशोभित अनंत शक्तियों का धारक मैं आत्मा हूँ, उसमें स्वसंवेदनज्ञान प्रगट न करे तो शुभराग तथा निमित्त का पक्ष नहीं छूटेगा। धर्म की प्राप्ति के लिये अपने माने हुये विधि-विधान अनंतबार किये, तथापि आत्महितरूप कार्य कभी नहीं हुआ। सत्य बात श्रवण करने को मिले तो उससे क्या हुआ ? मजदूरों के यहाँ भी भाट-बारोट आकर उनकी सैकड़ों हजारों वर्ष पुरानी वंशावली पढ़कर सुनाते हैं किंतु दिन भर के श्रम से थके हुए वे मजदूर लोग हुक्का-बीड़ी तथा बातों में तल्लीन रहते हैं; तब बारोट उनको कहता है कि तुम्हारे पूर्वज महान प्रतापी हो गये, उनके गुणगान सुनाता हूँ, जरा सुनो तो सही। तब वे कहते हैं कि 'लवती गाला' अर्थात् तुम अपनी सुनाते रहो, हम अपना कार्य कर रहे हैं। ठीक इसीप्रकार आचार्यदेव संसारी दुःखी प्राणी को सत्य बात श्रवण कराते हैं कि तेरे कुल में ही सर्वज्ञ पिता हो गये हैं, उनकी बात कहता हूँ। शुद्ध पर्याय का पिता चैतन्यद्रव्य है, उसमें कितनी शक्तियाँ हैं, उनका क्या स्वरूप है, उसे आचार्यदेव तुझे समझाते हैं। अरे ! तेरी अपार शक्तियों की महिमा बतलायी जा रही है !

ज्ञानानंदमय पूर्ण-अखंड द्रव्यस्वभाव पर दृष्टि देने से शुद्ध पर्याय उत्पन्न होती है—यह अपूर्व बात कही जा रही है। सांसारिक रुचिवाले प्राणी कहते हैं कि—आपके पास बहुत उच्च दशा की बात है, वह बात इस समय नहीं, अभी हममें इतनी योग्यता कहाँ है ? ऐसा माननेवाले का अमूल्य समय तत्त्व का अनादर करने में चला जाता है।

अहो ! आत्मा की पर्याय में राग कारण नहीं है तथा राग की उत्पत्ति में आत्मद्रव्य कारण नहीं है। पर की पर्याय का भी मैं कारण नहीं हूँ—ऐसा प्रथम निर्णय करे, वह जीव स्वसन्मुख हो सकता है। अतीन्द्रिय आनंद के अनुभवसहित सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, और उसमें विशेष आनंदमय लीनता का होना, सो चारित्र है।

बाह्य में, शरीर की या शुभराग की क्रिया में, विकल्प में आत्मा का चारित्र नहीं है—ऐसा भगवान ने कहा है।

आत्मा को कैसे समझें ?

प्रश्न:—आत्मा को स्वज्ञेय बनाने के लिये क्या करना ?

उत्तर:—आत्मस्वभाव की महिमा बढ़ाना और रागादि विभाव की महिमा को छोड़ना; स्वभाव और विभाव की मर्यादा का बारंबार विचार करना, उनकी भिन्नता को जानकर नित्यस्वभाव में एकत्व का और विभाव से भिन्नत्व का प्रयत्न करना।

चैतन्य पूर्ण ज्ञानघन की महत्ता और विभाव की तुच्छता को समझना, क्योंकि जिसकी महत्ता समझे, उसमें एकाग्रता हुए बिना नहीं रहती, और जिसको तुच्छ समझे, उससे भिन्नत्व हुए बिना नहीं रहता। प्रारंभ से ही यह बात लक्ष में लेकर आत्मा को समझने का विशेष-विशेष प्रयत्न करना चाहिए। यही आत्मा को स्वज्ञेय बनाने का उपाय है।

भगवान का साधा हुआ और बताया हुआ

निर्वाण का पंथ

आज के दिन भगवान महावीर परमात्मा ने पावापुरी से मोक्ष प्राप्त किया। भगवान का आत्मा आज पूर्ण निर्मल पर्यायरूप परिणमित हुआ। आज भगवान सिद्ध हुए। पावापुरी में इन्द्रों तथा राजाओं ने निर्वाण का महामहोत्सव मनाया। उस दीपावली का तथा मोक्ष के नूतन वर्ष का आज दिन है। भगवान के मोक्ष को आज २४९६वाँ वर्ष लगा। भगवान पावापुरी से स्वभाव ऊर्ध्वगमन करके ऊपर सिद्धालय में विराजमान हैं। अनादिकाल में जो कभी नहीं हुई थी ऐसी अपूर्वदशा आज भगवान को पावापुरी में प्रगट हुई। इसलिये पावापुरी भी तीर्थधाम है। सम्मेदशिखर की यात्रा के समय पावापुरी की यात्रा करने गये, तब वहाँ अभिषेक किया था। वहाँ (सरोवर के बीच) जिस स्थान से भगवान मोक्ष पधारे, वहाँ भगवान के चरणकमल हैं। तीर्थंकरों का द्रव्य त्रिकाल मंगलरूप है। जो जीव केवलज्ञान प्राप्त करनेवाला है, उसका द्रव्य त्रिकाल मंगलरूप है।

भगवान का आत्मा त्रिकाल मंगलरूप है। उनका द्रव्य त्रिकाल मंगलरूप है; जहाँ से मोक्ष प्राप्त किया, वह क्षेत्र भी मंगल है; आज मोक्ष प्राप्त किया, इसलिये आज का काल भी मंगलरूप है; और भगवान के केवलज्ञानादिरूप भाव भी मंगलरूप हैं;—इसप्रकार भगवान महावीर परमात्मा द्रव्य-क्षेत्र-काल तथा भाव से मंगलरूप हैं। भगवान के मोक्ष प्राप्त करने पर यहाँ भरतक्षेत्र में तीर्थंकर का विरह हुआ। भगवान का स्मरण करके भगवान के भक्त कहते हैं कि—हे नाथ! आपने चैतन्यस्वभाव में अंतर्मुख होकर आत्मा की मुक्तदशा को साधा और ऐसा ही आत्मा वाणी द्वारा हमें दर्शाया। ऐसे स्मरण द्वारा श्रद्धा-ज्ञान की निर्मलता करे, वह मंगल काल है; जहाँ ऐसी निर्मल दशा प्रगट हो, वह मंगल क्षेत्र है। श्रद्धा-ज्ञान का जो भाव है, वह मंगलभाव है और वह आत्मा स्वयं मंगलरूप है। भगवान का मोक्षकल्याणक मनाने के बाद इन्द्र और देव नंदीश्वर द्वीप जाते हैं और वहाँ आठ दिन तक उत्सव मनाते हैं।

आज भगवान के निर्वाण का दिन है और इस अष्टप्राभृत में भी आज निर्वाण की ही

गाथा पढ़ी जा रही है। किसप्रकार निर्वाण होता है, कैसे पुरुष का निर्वाण होता है, वह बात शीलपाहुड़ की गाथा में कहते हैं:—

णाणेण दंसणेण य तवेण चरिएण सम्मसहिएण।
होहदि परिणिव्वाणं जीवाणं चरित्तसुद्धाणं॥११॥

उपयोग को अंतर में गहराई तक ले जाकर धर्मात्मा शांतरस का अनुभव करते हैं। जिसप्रकार कुएँ की गहराई से पानी निकालते हैं, उसीप्रकार सम्यक् आत्मस्वभावरूप कारणपरमात्मा को ध्येयरूप से पकड़कर उसमें उपयोग को गहराई तक उतारने पर पूर्ण शुद्धता होती है और इस रीति से परिनिर्वाण होता है। परिनिर्वाण कोई बाहर की वस्तु नहीं है, परंतु आत्मा की पर्याय परम शुद्ध हो गयी तथा विकार से छूट गयी, उसी का नाम परिनिर्वाण है।

भगवान को मनुष्य शरीर होने के कारण निर्वाण हुआ अथवा वज्रऋषभनाराचसंहनन होने से निर्वाण हुआ–ऐसा नहीं है; परंतु सम्यग्दर्शन–सम्यग्ज्ञान–सम्यक्चारित्र तथा सम्यक्तप से वे मुक्ति को प्राप्त हुए। आज के दिन भगवान महावीर ने मोक्ष प्राप्त किया था, उन्हीं का यह शासन चल रहा है। भगवान ने सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र और तप द्वारा मोक्ष प्राप्त किया और वही उपदेश भी दे गये हैं। भगवान तो अपने परम आनंद में मग्न हैं, अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव कर रहे हैं। ऐसी निर्वाणदशा का आज का मंगल–दिन है और निर्वाण के उपाय की यह गाथा भी मंगल है। इसप्रकार दीपावली मंगलरूप है।

जिन्होंने चैतन्य में ही उपयोग लगाकर बाह्यध्येय से उपयोग को विमुख किया है अर्थात् विषयों से विरक्त होकर चैतन्यानंद के रस का स्वाद लेते हैं, आनंद के अनुभव को उग्र बनाकर उसका रसास्वादन करते हैं, वे पुरुष नियम से निश्चय से–ध्रुवरूप से निर्वाण को प्राप्त करते हैं। उन्हें सुमार्गशाली कहा है।

देखो, यह निर्वाण का ध्रुवमार्ग! दर्शनशुद्धिपूर्वक दृढ़ चारित्र द्वारा जो जीव चैतन्य में एकाग्र होता है, उसे बाह्य–विषयों से विरक्ति हो जाती है। उसी का नाम शील है और ऐसा सम्यक्शीलवान जीव अवश्य निर्वाण को प्राप्त होता है। चैतन्य ध्येय को चूककर जिसने पर को ध्येय बनाया है, उस जीव को शील की रक्षा नहीं है। वह शरीर से भले ही ब्रह्मचर्य कापालन करता हो, परंतु यदि अंतर में राग की रुचि है, तो उसके शील की रक्षा नहीं है, उसके दर्शनशुद्धि नहीं है। जिसने चैतन्यस्वभाव की रुचि प्रगट की है और राग की रुचि छोड़ी

है, उसको चैतन्यध्येय से बाह्य-विषयों का ध्येय टूट जाता है, ऐसा शील निर्वाणमार्ग में प्रधान है। इन दो गाथाओं में तो दर्शनशुद्धि के उपरांत चारित्र की बात करके साक्षात् निर्वाणमार्ग कहा है।

अब एक दूसरी बात करते हैं—किन्हीं ज्ञानी-धर्मात्मा को कदाचित् विषयों से संपूर्ण विरक्ति न हुई न हो परंतु श्रद्धा बराबर है, मार्ग तो विषयों की विरक्तिरूप ही है—ऐसा यथार्थ मार्ग प्रतिपादन करते हैं, तो उन ज्ञानी को मार्ग की प्राप्ति कही गई है। सम्यक् मार्ग की स्वयं को प्रतीति है और उसी का बराबर प्रतिपादन करते हैं, परंतु अभी विषयों से अत्यंत विरक्तिरूप मुनिदशा आदि नहीं है, अस्थिरता है, तथापि वे ज्ञानीधर्मात्मा मोक्षमार्ग के साधक हैं; उनको इष्टमार्ग की प्राप्ति है और वे यथार्थमार्ग बतलानेवाले हैं, इसलिये उनके उपदेश से दूसरों को भी सम्यक् मार्ग की प्राप्ति होती है। परंतु जो जीव विषयों से—राग से लाभ मनाये, उसे तो सम्यक्मार्ग की श्रद्धा ही नहीं है, वह तो उन्मार्ग पर है, तथा उन्मार्ग का बतलानेवाला है। धर्मात्मा को राग होता है परंतु उसे वह बंध का ही कारण जानता है, इसलिये राग होने पर भी उसकी श्रद्धा में विपरीतता नहीं है; उसे मार्ग की प्राप्ति है और उसके उपदेश से अन्य जीव भी मार्ग की प्राप्ति कर सकते हैं।

अज्ञानी राग से स्वयं लाभ मानता है और राग से लाभ होना मनवाता है, तो वह स्वयं मार्ग से भ्रष्ट है तथा उसके पास से मार्ग की प्राप्ति नहीं हो सकती। अहा, चैतन्य के श्रद्धा, ज्ञान तथा उसमें लीनतारूप वीतरागता ही मोक्ष का मार्ग है; ऐसी वीतरागता ही मोक्षार्थी का कर्तव्य है, राग कहीं किंचित्मात्र कर्तव्य नहीं है। राग का एक कण भी मोक्ष को रोकनेवाला है, वह मोक्ष का साधन कैसे हो सकता है ?—ऐसी ज्ञानी को श्रद्धा है। अहा, जहाँ पुण्यभाव को भी छोड़ने योग्य मानते हैं, वहाँ ज्ञानी पाप में स्वच्छंदतापूर्वक कैसे वर्तेंगे ? चारित्रदशारहित हो, तथापि सम्यग्दृष्टि मोक्षमार्ग में ही है क्योंकि उसे चारित्र की भावना है और राग की भावना नहीं है। चैतन्य को ध्येय बनाकर राग से भिन्नता की प्रतीति हुई है। ऐसी प्रतीति बिना राग से लाभ माने और प्ररूपणा करे तो वह उन्मार्ग में है, उसके ज्ञान का सारा विकास भी निरर्थक है; भगवान के मार्ग को उसने नहीं जाना है, भगवान ने किसप्रकार मोक्ष प्राप्त किया, उसकी उसे खबर नहीं है। सम्यक्त्वी को अस्थिरता के कारण बाह्य-विषय संपूर्ण न छूटें, तथापि उसका ज्ञान नहीं बिगड़ता; दृष्टि के विषय में शुद्ध चैतन्यस्वभाव को पकड़ लिया है; वह कभी छूटता

नहीं है, उस स्वध्येय के आश्रय से वह सम्यक्मार्ग में वर्तता है, मोक्ष का माणिकस्तंभ उसके आत्मा में आरोपित हो गया है।

पूर्णतारूप परिनिर्वाण मंगलरूप है, और उसके प्रारंभरूप सम्यक्त्व भी मंगलरूप है।

इन दोनों की बात आज मांगलिक में आयी है.... इसप्रकार दीपावली का मंगलाचरण हुआ।

ज्ञान का कार्य ज्ञान में होता है

दिव्यध्वनि खिर रही हो, इन्द्र और गणधर उसका श्रवण कर रहे हों, तथापि उस वाणी के कर्ता भगवान नहीं हैं, और श्रवण के शुभराग का कर्ता ज्ञानस्वभावी आत्मा नहीं है। ज्ञान का कार्य ज्ञान में रहता है; ज्ञान का कार्य वाणी या राग में नहीं आता! ऐसे ज्ञानस्वभावी आत्मा को पहिचानने से सच्चे केवली और धर्मी की पहिचान होती है और तब अपने आत्मधर्म का प्रारंभ होता है। धर्म कहो या मोक्षमार्ग कहो। धर्म करे और मोक्ष की प्रतीति न हो, ऐसा नहीं होता।

भगवान को केवलज्ञान प्रगट होने के प्रथम क्षण में ही वे तीन काल-तीन लोक को जान लेते हैं। कौन से परमाणु वाणीरूप कब परिवर्तित होंगे—यह भी वे पहले से जान लेते हैं। वाणी के रजकणों को भगवान ग्रहण करें अथवा उन्हें छोड़ें, ऐसा कर्तृत्व भगवान में नहीं है। साधक की शुद्धदृष्टि और केवली का क्षायिकज्ञान—इन दोनों कर्म की अवस्था के अकर्ता-अभोक्ता हैं। भगवान! तेरा आत्मा ऐसा सर्वज्ञस्वभावी है कि उसमें दृष्टि कर तो कर्तृत्व रहित शुद्धपरिणमन होने पर तुझे आनंद का वेदन होगा और उस आनंददशा में दुःख का कर्तृत्व-भोक्तृत्व नहीं होता, तो पर को करने-भोगने की बात कैसी? जहाँ शुद्धज्ञान की दृष्टि प्रगट हुई, वहीं से अकर्तृत्व-अभोक्तृत्व का परिणमन प्रारंभ हुआ, वह बढ़ते-बढ़ते क्षायिकज्ञान तक पहुँचा। जिसप्रकार धर्मी की दृष्टि परभाव की कर्ता-भोक्ता नहीं है; उसीप्रकार ज्ञान भी परभाव का कर्ता-भोक्ता नहीं है; ज्ञान का कार्य ज्ञान में ही समाता है, बाहर नहीं जाता।

परम शांतिदायिनी

अध्यात्म-भावना

[आत्मधर्म की सरल लेखमाला]

लेखांक ५४] [अंक २९४ से आगे

भगवान श्री पूज्यपादस्वामीरचित 'समाधिशतक' पर पूज्य स्वामीजी के अध्यात्मभावना भरपूर वैराग्यप्रेरक प्रवचनों का सार।

(गाथा ९७ चालू)

श्री प्रवचनसार गाथा ८० में भी कहा है कि—

जो जानता अरहंत को गुण-द्रव्य अरु पर्याय से,
वह जीव जाने आत्म को तसु मोह नष्ट अवश्य हो।

द्रव्य-गुण तथा पर्याय तीनों से सर्वत: शुद्ध ऐसे भगवंत अरहंतदेव के आत्मा को जानने से, उस जैसे अपने शुद्धस्वरूप को भी जीव जान लेता है; इसलिये उसका मोह नष्ट हो जाता है। इस परमात्मा को जानकर उपासना करनेवाला स्वयं भी परमात्मा हो जाता है।

देखो, यह परमात्मा की उपासना का फल! परंतु उपासना किसप्रकार करें? केवलज्ञानी परमात्मा को प्रतीत में लेकर उसको उपास्यरूप से जिसने अंगीकार किया उसने अपने आत्मा में से रागादि और अल्पज्ञता की महिमा निकाल दी तथा पूर्ण सामर्थ्यवान ज्ञानस्वभाव का ही आदर किया; इसप्रकार ज्ञानस्वभाव का ही आदर करके स्वयं अपने स्वभावोन्मुख हो जाता है।—वही अरहंत तथा सिद्ध परमात्मा की यथार्थ उपासना है। तथा इसप्रकार ज्ञानस्वभाव की ओर झुककर उसमें एकाग्र होने से वह स्वयं भी परमात्मा हो जाता है।

देखो, भिन्न आत्मा की उपासना में मात्र भिन्न का ही लक्ष नहीं, परंतु भिन्न आत्मा का लक्ष छोड़कर, स्वयं अपने अभिन्न आत्मा की ओर उन्मुख हो जाता है, तब ही भिन्न आत्मा की (अरहंत-सिद्ध भगवान की) परमार्थ उपासना हुई। मात्र राग द्वारा भगवान की भक्ति करता रहे

और उस राग द्वारा लाभ मानता रहे तो वह यथार्थ सर्वज्ञ भगवान की उपासना नहीं करता परंतु राग की ही उपासना करता है; सर्वज्ञ की उपासना करने की विधि वह नहीं जानता। 'सर्वज्ञ की निकटता' करके उसकी उपासना करे कि अहो! ऐसी सर्वज्ञता!—जिसमें राग नहीं, अल्पज्ञता नहीं, परिपूर्ण ज्ञान और आनंद का जिसमें परिणमन है; मेरे आत्मा का भी ऐसा ही स्वभाव है;—ऐसी प्रतीति करके ज्ञानस्वभाव का बहुमान करके और रागादि का बहुमान छोड़कर, ज्यों ही स्वयं अपने ज्ञानस्वभाव में तन्मय हुआ, त्यों ही भाव-अपेक्षा से भगवान के साथ एकता हुई, जिसप्रकार भगवान का भाव है, उसीप्रकार का भाव अपने अंतरंग में प्रगट हुआ, इसलिये उसने भगवान की उपासना की। इसप्रकार से जो जीव, सर्वज्ञ परमात्मा की उपासना करते हैं, वे स्वयं परमात्मा हो जाते हैं।

केवली भगवान की परमार्थ-स्तुति का स्वरूप श्री समयसार की ३१वीं गाथा में कहा है, वहाँ भी ऐसा ही कहा है कि जो जीव इन्द्रियों से भिन्न अपने उपयोगस्वरूप आत्मा को जानते हैं, वे जितेन्द्रिय हैं तथा वही केवलज्ञान की परमार्थ स्तुति है। देखो, इसमें केवलज्ञानी की ओर तो लक्ष भी नहीं, आत्मा की ओर ही लक्ष है, तथापि उसे केवलज्ञानी की स्तुति कहते हैं। प्रथम, उस ओर लक्ष था और उसके द्वारा निजस्वरूप का निर्णय करके स्वसन्मुख हो जाता है—तब ही सच्ची स्तुति होती है। पंच परमेष्ठी की परमार्थ उपासना, आत्मा के आश्रय से होती है। पर के आश्रय से नहीं होती। बीच में जितना राग रह जाता है, उतनी तो उपासना की निर्बलता है। सर्वज्ञ का निर्णय अपने ज्ञानस्वभाव के आश्रय से ही होता है। ज्ञान अल्प होने पर भी, उस ज्ञान को पूर्ण ज्ञानस्वभाव की ओर उन्मुख करने से उसमें सर्वज्ञता का निर्णय होता है। वर्तमान में जिसे सर्वज्ञ के निर्णय का भी पता नहीं, उसे सर्वज्ञ की उपासना कहाँ से हो?

अरहंत और सिद्ध भगवान को जैसा परिपूर्ण ज्ञान और आनंद प्रगटरूप प्रसिद्ध है, वैसा ही ज्ञान और आनंदरूप मेरा स्वभाव है, इसीप्रकार अरहंत और सिद्ध को ध्येय बनाकर उनकी भाँति आपने आत्मा की ओर उन्मुख होकर, उसकी श्रद्धा-ज्ञान-एकाग्रतारूप आराधना से जीव स्वयं परमात्मा हो जाता है।

अरहंत और सिद्ध भगवान की उपासना को भिन्न उपासना कहते हैं,—परंतु वह कब? कि—जब आत्मा की ओर उन्मुख होकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट करे तब। इसलिये वास्तव में तो अभिन्न उपासनारूप निश्चय प्रगट हुआ, तब भिन्न उपासना को व्यवहार कहते

हैं। जो मात्र पर के सामने ही देखा करे और स्व-सन्मुख न हो, उसे तो अभिन्न या भिन्न एक भी उपासना नहीं होती—ऐसा समझना चाहिये ॥९७॥

❀ ❀ ❀

अब, अभिन्न उपासना का दृष्टांत तथा फल कहते हैं—

उपास्यात्मानमेवात्मा जायते परमोऽथवा।
मथित्वाऽऽत्मानमात्मैव जायतेऽग्निर्यथा तरुः ॥९८॥

आत्मा की उपासना में, भिन्न उपासना और अभिन्न उपासना—ऐसे दो प्रकार हैं; अरहंत-सिद्ध के स्वरूप को जानकर, वैसा अपने स्वरूप का ध्यान करना, वह उपासना है; उसमें अरहंत की उपासना कहना, वह भिन्न उपासना है, और अपने स्वरूप की उपासना कहना, वह अभिन्न उपासना है। भिन्न उपासना की बात ९७ वीं गाथा में की; तथा बाँस में से स्वयं अग्नि होती है, उस दृष्टांत से अभिन्न उपासना का स्वरूप इस गाथा में समझाते हैं।

जिसप्रकार बाँस का वृक्ष बाहर के अन्य किसी साधन बिना स्वयं अपने साथ ही रगड़ने से अग्निरूप हो जाता है; उसीप्रकार आत्मा अन्य किसी के अवलंबन बिना स्वयं अपने में ही एकाग्रता के मंथन द्वारा परमात्मा हो जाता है। जिसप्रकार बाँस में शक्तिरूप से अग्नि भरी हुई है, उसमें रगड़ से स्वयं व्यक्त अग्निरूप परिणमन हो जाता है; उसीप्रकार आत्मा में परमात्मदशा शक्तिरूप पड़ी है, उस पर्याय को अंतर में एकाग्र करके स्वभाव का मंथन करते-करते स्वयं परमात्मदशारूप में परिणमित हो जाता है। इसमें जो त्रिकाल शक्ति है, वह शुद्ध उपादान है, तथा पूर्व की मोक्षमार्गरूप पर्याय, वह व्यवहार कारण है इसलिये उसे निमित्त ही कहने में आता है। त्रिकालरूप जो शुद्धस्वभाव है, वही मोक्ष का परमार्थ कारण है। उस कारणस्वरूप में एकाग्र होने से मोक्ष होता है। यहाँ तो अभिन्न उपासना बतलाना है, इसलिये आत्मा स्वयं अपने में एकाग्रता द्वारा अपनी उपासना करके परमात्मा हो जाता है। देखो! यह मोक्ष का सुगम मार्ग है! आत्मा की उपासना ही मोक्ष का सुगम तथा अचल मार्ग है।

देखो, इसमें निश्चय-व्यवहार किसप्रकार आया? त्रिकाल कारणपरमात्मा भूतार्थ होने से वह मोक्ष का निश्चयकारण है, तथा मोक्षमार्गरूप पर्याय तो अभूतार्थ होने से व्यवहारकारण है। उसमें निश्चयकारण को शुद्ध उपादान कहने में आता है, और व्यवहारकारण को निमित्त कहने में आता है—इसप्रकार अध्यात्मदृष्टि में सूक्ष्मता से अपने में ही उपादाननिमित्त है।

'अभिन्न उपासना में' संयोग की बात नहीं आती, संयोग तो भिन्न है।

जिसप्रकार बाँस के वृक्ष स्वयं अपनी डालियों के साथ ही रगड़ते-रगड़ते अग्निरूप हो जाता है; उसीप्रकार आत्मा स्वयं अपने गुणों के साथ घर्षण से, अर्थात् अंतर्मंथन से पर्याय को आत्मा में एकाग्र करते-करते स्वयं परमात्मा हो जाता है। अंतरस्वरूप में लीन होकर आत्मा में अभेदता करना, वह अभेद उपासना है; और अभेद उपासना ही मोक्ष का कारण है।

प्रश्न : भिन्न उपासना का फल भी तो मोक्ष कहा था?

उत्तर : वहाँ भिन्न उपासना में से अभिन्न उपासना में आ जाता है-वह परमात्मा होता है। अरहंत और सिद्धभगवान का निर्णय करके, वैसे अपने स्वभाव की ओर जो झुक गया, अर्थात् भिन्न उपासना छोड़कर अभिन्न उपासना में आ गया, उसे परमात्मदशा हुई; वहाँ निमित्त से उसे भिन्न उपासना का फल कहा है।

यहाँ तो उससे भी सूक्ष्म बात है। यहाँ तो जो निश्चयमोक्षमार्गरूप पर्याय है वह भी मोक्ष का कारण व्यवहार से है, क्योंकि मोक्षपर्याय होने से उस मोक्षमार्ग पर्याय का तो व्यय हो जाता है; वह स्वयं कार्यरूप परिणमन नहीं करती इसलिये वह निमित्त है; और ध्रुवस्वभाव के साथ अभेद होकर मोक्षपर्यायरूप कार्य हुआ है, इससे वह निश्चयकारण है। मोक्षपर्याय, वह भी व्यवहारनय का विषय है। तथा अभेद द्रव्य, निश्चयनय का विषय है। उसी के आश्रय से मुक्ति होती है।

देखो, यह मोक्ष का मार्ग कहा जाता है।

अपने को आप भूल के हैरान हो गया।
अपने को आप जानके मुक्त हो गया॥

अज्ञान से संसार तथा भेदज्ञान से मोक्ष। भेदज्ञान किसे कहते हैं—उसकी यह बात है। भेदज्ञानी अपने चिदानंदस्वभाव को शरीरादि से भिन्न, रागादि से भिन्न जानकर, उसी में एकाग्रता करके मुक्त होता है। अज्ञानी, रागादि को अपना स्वरूप मानकर, उसमें एकाग्रता करने से ही संसार में परिभ्रमण करता है।

मोक्ष के लिये किसकी उपासना करना?—अपने आत्मा की ही उपासना से मुक्ति होती है। बाह्य-पदार्थों की ओर का संकल्प-विकल्प छोड़कर, स्वयं अपने आत्मा में लीन होकर उसकी उपासना करने से परमात्मदशा प्रगट हो जाती है।—इसमें स्वयं ही उपासक है और

स्वयं ही उपास्य है;—इसलिये यह अभिन्न उपासना है। ऐसी उपासना बिना मुक्ति नहीं। जिसप्रकार बाँस के वृक्ष को अग्निरूप होने में अपने से भिन्न दूसरे साधन निमित्त नहीं, स्वयं अपने में ही घर्षण से अग्निरूप होता है; उसीप्रकार आत्मा को परमात्मा होने में अपने से भिन्न दूसरे साधन नहीं, स्वयं अपने में ही घर्षण से (निर्विकल्प में लीनता से) अपने ध्यान से ही परमात्मा हो जाता है। निजस्वरूप को ध्येय बनाकर अनंत जीव सिद्धपद को प्राप्त हुए हैं। अनंत जीव आत्मा में एकाग्र होकर परमात्मा हुए हैं, परंतु पर में एकाग्र होकर परमात्मा नहीं हुए।

आत्मा का द्रव्यस्वभाव त्रिकाल मोक्षस्वरूप है, तथा पर्याय में मोक्ष नया प्रगट होता है; तथापि 'द्रव्यमोक्ष' त्रिकाल है, और उसके आश्रय से 'भावमोक्ष' (मुक्तदशा) प्रगट हो जाती है। शक्ति के ध्यान से मुक्ति होती है। ध्याता, ध्यान और ध्येय यह कहीं भिन्न-भिन्न नहीं, आत्मा स्वयं ध्याता, स्वयं ही ध्येय और अपने में ही एकाग्रतारूप ध्यान—ऐसी अभिन्न आराधना का फल मोक्ष है। ध्याता और ध्येय का भी वहाँ भेद नहीं रहता; द्रव्य-पर्याय की एकता होकर वहाँ द्रव्य ध्येय और पर्याय ध्याता—ऐसा भी भेद नहीं रहता।—ऐसी अभेद उपासना से आत्मा परमात्मा हो जाता है।

देखो, भाई! एक बार इस बात का अंतर में निर्णय तो करो... जिसको मार्ग का निर्णय सच्चा होगा, उसके संसार का अंत आयेगा, परंतु मार्ग का ही निर्णय नहीं करे और विपरीत मानेगा तो अनंत काल तक अंत नहीं आयेगा। अरे! ऐसा भव पा करके जीवन में सत्य मार्ग के निर्णय का भी अवकाश न ले तो उसने जीवन में क्या किया? मार्ग के निर्णय बिना तो जीवन व्यर्थ है। इसलिये आत्मा के हित के लिये मार्ग का निर्णय करना चाहिये। निर्णय करनेवाले का जीवन भी सफल है। जिसने यथार्थ मार्ग का आत्मा में निर्णय कर लिया है, वह क्रम-क्रम से उस मार्ग में चलकर मुक्ति को प्राप्त करेगा।

इसप्रकार आत्मस्वरूप की आराधना से ही मुक्ति होती है; इसलिये उसी की भावना करनी चाहिये ॥९८॥

आत्मस्वरूप की भावना करने से आत्मा स्वयं स्वतः परमात्मपद को प्राप्त होता है—ऐसा अब कहते हैं।

इतीदं भावयेन्नित्यम् अवाचांगोचरं पदम्।
स्वतएव तदाप्नोति यतो नावर्तते पुनः ॥९९॥

पूर्व की गाथाओं में भिन्न उपासना का और अभिन्न उपासना का स्वरूप कहा, इन दोनों में शुद्धात्मस्वरूप की सन्मुखता है। इसप्रकार जानकर निरंतर उस शुद्ध आत्मा की भावना करनी चाहिये; उसकी भावना से वचन-अगोचर ऐसा परमपद स्वतः प्राप्त होता है कि जिसमें से कदापि पुनरागमन नहीं होता।

सिद्ध भगवान तथा अरहंत भगवान को जानकर प्रथम तो आत्मा के वीतराग-विज्ञान स्वभाव का निर्णय करना चाहिये तथा फिर उसकी भावना से उसमें एकाग्रता का अभ्यास करना चाहिये। यही परमात्मा होने का उपाय है। किसी निमित्त का आश्रय करके या रागादि का आश्रय करके सिद्ध या अरहंत भगवान, परमात्मदशा को प्राप्त नहीं हुए, परंतु आत्मस्वरूप का आश्रय करके उसी के ध्यान में परमात्मदशा को प्राप्त हुए हैं।

श्री समयसार गाथा ४१० में कहते हैं कि शरीराश्रित मोक्षमार्ग नहीं; अरहंत भगवंतों ने शरीर का ममत्व छोड़कर शुद्धात्मा के आश्रय से दर्शन-ज्ञान-चारित्र की ही मोक्षमार्गरूप से उपासना की है। भगवंतों ने स्वद्रव्याश्रित ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को ही मोक्षमार्ग कहा है; इसलिये हे भव्य! शुद्धज्ञानचेतनामय होकर तू अपने आत्मा को ध्या।

अपने शुद्ध आत्मा की भावना के प्रभाव से ही आत्मा सर्वज्ञ होता है; अहो, सर्वज्ञपद की महिमा वचन से अगोचर है, उसकी प्राप्ति शुद्धात्मा की भावना से अर्थात् स्वानुभव से होती है। इसलिये श्रीमद् राजचंद्र कहते हैं कि 'अनुभवगोचर मात्र रहा वह ज्ञान जो।' सर्वज्ञस्वभाव से भरे हुए अपने चैतन्यपद को छद्मस्थ-ज्ञानी भी अपने स्वानुभव से बराबर जाना सकता है। उसको जानकर उसी की नित्य भावना करने जैसी है।

शुद्धस्वरूप की भावना करनेवाला अर्थात् पर्याय को अंतर्मुख करके स्वरूप में लीन होनेवाला जीव स्वयं अपने से ही सिद्धपद प्राप्त करता है, किसी अन्य बाह्य साधन के कारण सिद्धपद प्राप्त नहीं होता। संस्कृत में लिखा है कि मोक्ष किस विधि से प्राप्त होता है ? कि '**स्वत एव आत्मनैव परमार्थतो न पुनः गुरु आदि बाह्यनिमित्तात्**' अर्थात् अपने द्वारा अपने आत्मा से ही परमार्थ मोक्ष को प्राप्त होते हैं, न कि गुरु आदि बाह्य निमित्त से ? देखो, कितनी स्पष्ट बात की है।

जिसको अपना मोक्षपद साधना है, तो उस मोक्षपद को प्राप्त हुए (अरहंत और सिद्ध) तथा उसे साधनेवाले (साधु, मुनिराज आदि) जीव कैसे होते हैं, उसकी पहिचान तो उसे होती

है; इससे विपरीत की ओर उसका भाव झुकता नहीं। परंतु यहाँ तो इससे आगे बढ़कर अंतिम आराधना की पूर्णता की उत्कृष्ट बात है। सच्चे देव-गुरु को पहिचानने के बाद भी उनके लक्ष से राग में रुक नहीं जाता, परंतु उनके जैसा निजस्वरूप के अनुभव में एकाग्र होकर मोक्ष को साधता है। जितनी निजस्वरूप में एकाग्रता, उतना मोक्षमार्ग। अहो, मात्र स्वाश्रय में मोक्षमार्ग है। अंशमात्र पराश्रय मोक्षमार्ग में नहीं। मोक्षमार्ग में पर का आश्रय माने, उसने सच्चे मोक्षमार्ग को पहिचाना नहीं। भाई, पर के आश्रय से मोक्षमार्ग मानेगा तो उसका लक्ष छोड़कर निजस्वरूप का ध्यान तू कब करेगा? परलक्ष छोड़कर, निजस्वरूप के ध्यान में लीन हुए बिना तीन काल में किसी को मोक्ष नहीं होगा।—अभी ऐसा मार्ग भी निश्चित न करे, वह उसे साधेगा कब? मार्ग के निर्णय में ही जिसकी भूल हो, वह उसे साध नहीं सकता। यहाँ तो निर्णय के उपरांत अब पूर्ण समाधि प्राप्त करके जन्म-मरण के अभावरूप सिद्धपद होने की बात है।—यही सच्चा समाधिसुख है। 'सादि अनंत अनंत समाधि सुखमां, अनंत दर्शन ज्ञान अनंत सहित जो'—ऐसे निजपद की प्राप्ति का अपूर्व अवसर आये-ऐसी यह बात है ॥९९॥

अरहंतमार्ग में मोक्ष के उपाय का यथार्थ स्वरूप क्या है, वह बतलाया तथा उसके फल में परमपद की प्राप्ति भी बतलायी। अब ऐसा यथार्थ मोक्षमार्ग दूसरे किसी अन्यमत में नहीं होता—यह बात समझाते हैं—

अयत्नसाध्यं निर्वाणं चित्तत्त्वं भूतजं यदि।
अन्यथा योगतस्तस्मान्न दुःखं योगिनां क्वचित्॥१००॥

यह चैतन्यतत्त्व आत्मा स्वतःसिद्ध, शरीर से भिन्न तत्त्व है, वह अविनाशी है। यह चैतन्यतत्त्व 'भूत' अर्थात् पृथ्वी-पानी-अग्नि-वायु आदि से उत्पन्न हुआ हो तो शरीर की उत्पत्ति के साथ उसकी उत्पत्ति, और शरीर के नाश से उसका नाश—ऐसा ही, इसलिये मोक्ष के लिए कोई यत्न करने का न रहे। शरीर के संयोग से आत्मा उत्पन्न होता है और शरीर के वियोग से आत्मा नाश को प्राप्त होता है, शरीर से भिन्न कोई आत्मा ही नहीं—ऐसा नास्तिक लोग मानते हैं। शरीर के छूटने पर आत्मा का भी अभाव हो जायेगा—इसप्रकार अभाव को वे मोक्ष कहते हैं; इसलिये उनको मोक्ष का प्रयत्न करने का कहाँ रहा? मोक्ष तो परम आनंदमय दशा है, और वह ज्ञानमय पुरुषार्थ से प्रगट होती है। 'मोक्ष' वह कहीं आत्मा का अभाव नहीं; परंतु मोक्ष, यह तो कर्म के अभाव में आत्मा का पूर्ण शुद्धस्वरूप से विकसित हो जाना है। यदि मोक्ष में आत्मा

का अभाव हो तो ऐसे मोक्ष को नास्तिक के सिवा कौन चाहेगा ? स्वयं अपने अभाव को कौन चाहेगा ? इसलिये नास्तिक मानते हैं तदनुसार आत्मा कहीं पंचभूत से उत्पन्न नहीं हुआ, तथा वह मरकर पंचभूत में मिल नहीं जाता; वह तो स्वयंसिद्ध अनादि-अनंत तत्त्व है; और निजस्वरूप में एकाग्रता के प्रयत्न से वह परम आनंदरूप मोक्षदशा को प्राप्त होता है। मोक्षदशा में सदाकाल उसका अस्तित्व रहता है।

तथा दूसरे कोई ऐसा मानते हैं कि आत्मा तो सर्वथा शुद्ध ही है, पर्याय में भी अशुद्धता नहीं है—तो वह भी भ्रमणा है, और उनको भी मोक्ष का उद्यम नहीं होता। आत्मा में शुद्धता का सामर्थ्य सदाकाल है, परंतु उसे पहिचानकर उसी में उपयोग को एकाग्र करे, तब वह प्रगट होता है, और ऐसे उपायरूप योग द्वारा मोक्ष होता है। ऐसी मोक्षदशा न प्रगटे, वहाँ तक आत्मा में अशुद्धता है।

इसप्रकार शरीर से भिन्न आत्मतत्त्व की नित्यता, उसकी पर्याय में अशुद्धता तथा प्रयत्न द्वारा उस अशुद्धता का नाश करके मोक्ष की उत्पत्ति, तथा मोक्षदशा में परम आनंदसहित आत्मा का नित्य अस्तित्व, यह सर्वप्रकार जाने, तभी मोक्ष का सच्चा उद्यम होता है।

शरीर, वह आत्मा नहीं है; ऐसी भिन्नता जानकर जिसने अपने उपयोग को निजस्वरूप में एकाग्र किया है—ऐसे योगी मुनियों को शरीर के छेदन-भेदनादि उपसर्ग में भी कदापि दुःख नहीं होता। वे तो आनंदस्वरूप में उपयोग को एकाग्र कर-करके मोक्ष के साधन में तत्पर है। मोक्ष का उद्यम तो आनंदकारी है, वह कहीं दुःखरूप नहीं। जगत को मोक्ष का उपाय मालूम नहीं है।

यहाँ तो कहते हैं कि शरीर, आत्मा नहीं है; '**तस्मात् न दुःखं योगिनां क्वचित्**'.... शरीर से भिन्न चैतन्यतत्त्व में जहाँ उपयोग को एकाग्र किया, वहाँ निजानंद के अनुभव में लीन मुनि को शरीर का लक्ष्य नहीं, फिर दुःख कैसा ? इधर उनके शरीर को सिंह, बाघ खाते हैं और वे अन्तर में अतीन्द्रिय सुख की कल्लोल करते हैं।

इसप्रकार शरीर से भिन्न आत्मतत्त्व को जानकर अपने निजस्वरूप में उपयोग को एकाग्र करो—ऐसा उपदेश है। निजस्वरूप में उपयोग को एकाग्र करना, वही मोक्षमार्ग है, उसमें सुख है, उसमें समाधि है, उसमें महा आनंद है; उसमें किंचित् दुःख नहीं ॥१००॥

❀ ❀ ❀

धार्मिक समाचार-संग्रह

भाद्र मास में दसलक्षण धर्म-पर्व में विद्वानों को भेजने के लिये श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट प्रचार-विभाग के पास बहुत से आमंत्रण आये थे; विद्वानों का सब जगह पहुँचना कठिन था; तो भी करीब ४३ गाँवों में विद्वानों को भेजा गया; जिनके समाचार संक्षेप में यहाँ दिये जा रहे हैं:—

अलवर (राजस्थान) समाज की प्रार्थना पर ब्रह्मचारी रमेशचंद्रजी को भेजा। अत: यहाँ की जैन समाज सोनगढ़ प्रचार समिति व पूज्य स्वामीजी की आभारी है। ब्रह्मचारीजी के प्रवचन के समय अभूतपूर्व भीड़ रहा करती थी, वीतराग कथित सिद्धांतों का इतना रोचक वर्णन हुआ कि श्रोतागण बड़े लालायित चित्त व आनंदित हुए। दोपहर को, रात्रि को पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों की टेप रील चलती थी, जिसका आप सरल शब्दों में खुलासा करते थे, श्रोतागण का हर्षोल्लास तो देखते ही बनता था, कहते थे इसप्रकार कि-सर्वज्ञ वीतराग कथित तत्त्वज्ञान एवं नय-विभाग सहित स्पष्ट कथनी जीवन में कभी नहीं सुनी, यह सब पूज्य स्वामीजी की असीम प्रभावना से हो रहा है। *— वैद्य चिरंजीलाल बुर्जावाले*

अध्यक्ष— श्री दिगम्बर जैन अग्रवाल पंचायती मंदिर, अलवर (राज.)

अकलतरा (बिलासपुर) ब्रह्मचारी आत्मारामजी का यहाँ चातुर्मास होने से समाज को काफी धार्मिक तात्त्विक ज्ञान का लाभ मिला। तीन मास से जैन शिक्षण शिविर खोला गया है, जिसमें सभी जैन, बड़ों व छोटों में सूत्रजी, मोक्षमार्गप्रकाशक, जैनसिद्धांत प्रवेशिका, प्रश्नोत्तरमाला के तीनों भाग का अध्ययन चल रहा है, २५ दंपतियों ने आजीवन ब्रह्मचर्य अंगीकार किया है तथा मुमुक्षु मंडल स्थापित हुआ। हम सब स्वामीजी के ऋणी हैं।

— कन्हैयालाल शास्त्री

एत्मादपुर (आगरा) समाज के निवेदन से श्री चिमनलालजी आगरा से यहाँ आये, तीन दिन ठहरे। आपके प्रवचन, शंका-समाधान का समाज ने अच्छी तरह लाभ लिया। प्रवचन इतना प्रभावशाली था कि सभास्थान श्रोताओं से खचाखच भर जाता था; दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल का स्थापन किया गया। जसवंतनगर के साधर्मी बंधु आपको लिवा ले गये, हमारी प्रार्थना अपूर्ण रही। *— रामस्वरूप जैन*

अहमदाबाद—दसलक्षणी धर्म पर्व पर श्री देवशीभाई पधारे। प्रतिदिन दो प्रवचन,

रात्रि को जिनेन्द्रभक्ति का कार्यक्रम था; पर्वराज सानंद मनाया गया।

— *चुनीभाई :* मंत्री श्री दिगम्बर जैन मंदिर
खाडिया चार रास्ता, पोस्ट ऑफिस के सामने

आगरा (उत्तरप्रदेश) आपने श्री चिमनभाई को हमारी समाज की विनंती से भेजा, हम सोनगढ़ संस्था का बहुत उपकार मानते हैं। आपकी समझाने की शैली बहुत स्पष्ट सरल है। आगरा में ८ शैलियाँ हैं। पंडितजी के सभी जगह प्रवचन हुए। पवित्र अध्यात्मधारा का अपूर्व प्रचार हुआ, सही दिशा मिली, सोनगढ़ संस्था के महान पुरुषार्थ का लाभ जो हमें मिला है, शब्दों द्वारा प्रगट करने में हम असमर्थ ही हैं। श्री चिमनभाई प्रतिदिन ८ घंटे प्रवचन देने में समय देते रहे, ऐसा अवसर कभी भी हमने नहीं देखा और न किसी विद्वान ने पूर्व इतना समय दिया। यह हमारे बड़े गौरव की बात है कि अध्यात्मवाणी को सुनने में जीव आलस प्रमाद करते हैं; परंतु पंडित चिमनभाई को सुनने में बड़े ध्यान से एकचित्त होकर सब सावधानी से सुनते रहे। पूज्य स्वामीजी जो अपूर्व वाणी में कह रहे हैं, वह बात हमने पंडितजी द्वारा सुनी है।

(१) ***पदमचन्द जैन,*** व्य. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंडल आगरा।
(२) ***प्रेमचंद जैन,*** मंत्री श्री दिगम्बर जैन समाज मोती कटरा तथा
(३) मंत्री श्री दिगम्बर जैन समाज वी.पी. टोला

अंकलेश्वर (गुजरात)—पर्यूषण पर्व में समूहपूजा प्रतिदिन होती थी, एक बहिन ने १० उपवास किये, एक ने पाँच उपवास किये थे। बम्बई से श्री कानजीस्वामी के प्रवचनों की टेप रेकार्ड रीलें मँगवायी थीं; दिन में दो बार दो घंटा तक सुनने का कार्यक्रम था।

— *कुमारपाल गाँधी*

करेलीगंज (नरसिंहपुर, म.प्र.)—श्री शिखरचंदजी बडौत निवासी सोनगढ़ से पधारे थे; पर्व में १० दिन के ४० प्रवचन समाज ने अतिरुचि से सुने। सर्वज्ञ कथित जैन तत्त्वज्ञान की शिक्षण पद्धति से समझाया; शंका-समाधान और आपके विशिश्ट प्रभाव से हमारे समाज में जो मिथ्यात्व एवं मूढ़ता थी, वह नष्ट हुई है। महिला समाज अच्छी तरह जागृत होकर मिथ्यामान्यता छोड़कर सत्य समझने योग्य हो गई; उसके लिये हम सब पंडितजी को कोटिश: धन्यवाद देते हैं। आप जबलपुर पधारे। इस अवसर पर ग्वालियर निवासी श्री पंडित धन्नालालजी पधारे। पंडितजी तथा उनकी धर्मपत्नी का महिला समाज ने स्टेशन पर जाकर स्वागत किया। पंडितजी के प्रवचनों का लाभ आम जनता को मिले, इसलिये मैदान में बड़ा

सभामंडप बनाया था। नरसिंहपुर तथा गोटेगांव के अग्रणी जन यहाँ आपको सुनने के लिये पधारे थे; बहुत ही आनंद आया। पंडितजी को नरसिंहपुर आदि के अग्रणीजन भारी अनुरोध से ले गये हैं। करेली जैन समाज में से बड़ी संख्या में लोगों ने आगामी शिक्षण वर्ग में सोनगढ़ आने का निश्चय किया है। — *पन्नालाल जैन*

कलकत्ता—श्री पंडित खेमचंदभाई शेठ सोनगढ़ से पर्वराज पर यहाँ पधारे। हम सबको बहुत लाभ हुआ है। आपके कारण अच्छी तरह धर्म-प्रभावना हुई है। स्थानकवासी जैन बंधुओं ने भी आपके प्रवचन एवं शंका-समाधान से लाभ लिया। आपकी प्रवचन-शैली से प्रभावित होकर लोग बड़ी संख्या में आते थे। हरेक कार्यक्रम में अपार उत्साह रहा। दिगम्बर जैन युवक समिति की ओर से तारीख २१-९-६९ को जैन भवन में सभा का आयोजन किया गया था, जिसके अध्यक्षपद पर श्री साहू शांतिप्रसादजी जैन थे; श्री खेमचंदभाई के प्रवचनों से श्रोतागण बहुत प्रभावित हुए। साहूजी तो बारंबार प्रवचन में आते थे। गोहाटी (आसाम) से श्री बाबूभाई तारीख २५ को पधारे थे; आपके प्रवचन भी तीन दिन तक हुए। लोगों ने अच्छा लाभ लिया। — **वीरचंद कानजी.**

कुरावड (उदयपुर-राज.)—सोनगढ़ से श्री किरणमाला बहिन हमारे यहाँ महिला समाज को लाभ देने हेतु पधारी थीं। धार्मिक संस्कार देने में आपने असीम कृपा की है। एक महीने में तो द्रव्यसंग्रह, छहढाला, जैन सिद्धांत प्रवेशिका द्वारा सच्ची लगन सहित वीतराग-परंपरा का सार समझाया, अध्ययन कराया, शिक्षण कक्षा में ५७ बहिनों ने पूर्ण जिज्ञासा से नियमित लाभ लिया। धन्य है, ऐसी बहिनों को हमारे यहाँ बहुत आवश्यकता है। घोर मिथ्यात्व अंधेरे को मिटाकर निर्मल प्रकाश बतलानेवाली वाणी हमने पूर्व में नहीं सुनी। (पत्र बहुत लंबा है) — **महावीर जैन**

गुना (म.प्र.)—ब्रह्मचारी झमकलालजी को आपने भेजा, १२ दिन तक सभी को आध्यात्मिक ज्ञान का रसास्वादन कराया, कार्यक्रम प्रतिदिन पाँच घंटे का था। आप पद्मनंदि में से दस धर्म पर प्रवचन करते थे, तब आपके जीवन में से पात्रता की झलक टपकती थी। सादगी, ब्रह्मचर्य का रंग, विशाल बुद्धि, मध्यस्थता आदि आपके सद्गुणों की समाज पर अनूठी छाप पड़ी। जैनधर्म की महिमा, आत्मकल्याण का सुअवसर आ गया है—आदि कथनी चिरस्मरणीय रहेगी।

विशेष खुशी में देहली से सन्मति संदेश के संपादक पंडित श्री प्रकाशचंदजी शास्त्री 'हितैशी' भी आमंत्रण पर पधारे थे, आपका कार्यक्रम बड़े मंदिरजी में था; सुंदर स्पष्ट अध्यात्मरसपूरित प्रवचन होता था। इस वर्ष हितैषीजी के सहयोग से हमें जो आत्मज्ञान की बात सुनने को मिली है, वह अनेक वर्षों में नहीं मिली थी। — *विनीत केवलचंद पांडया*

गाजियाबाद (उ.प्र.)—विदिशा निवासी श्री ज्ञानचंदजी सोनगढ़ से पधारे थे; समाज का इन दिनों में बड़ा भारी उपकार हुआ। प्रतिदिन तीन घंटे प्रवचन तथा शंका-समाधान से प्रभावित होकर आपको वाणीभूषण की पदवी उचित समझकर दी गई है। शिक्षणवर्ग में सोनगढ़ आकर धर्मलाभ लेने का बड़ी संख्या में निर्णय किया है।

— **शिखरचंद जैन,** *सेक्रेटरी, समस्त दिगम्बर जैन समाज*

ग्वालियर (म.प्र.)—पर्वराज में सोनगढ़ द्वारा भेजे गये आरोन निवासी मोतीलालजी कौशल पधारे। आपने हमको अपूर्व धर्मलाभ दिया; अन्य जैन मंदिरों में भी समाज के अनुरोधवश प्रवचन दिये, प्रतिदिन ८ घंटे तक आपने कार्यक्रम दिया; समाज में गलत फहमियों का नाश हुआ। माधोगंज व बड़े मंदिरजी में स्वाध्याय मंडल प्रारंभ कर दिया। इस भारतवर्ष की सकल दिगम्बर जैन समाज को बड़ा गौरव है कि वीतरागमार्ग के सत्य निरूपण द्वारा लाखों जीव सन्मार्ग को समझने लगे, आत्मकल्याण करने में समर्थ होने लगे हैं; उसमें स्वामीजी की अत्यंत कृपा है। आश्विन कृष्णा १ को विदिशा निवासी पंडित श्री ज्ञानचंदजी वाणीभूषण हमारे आमंत्रण से गाजियाबाद से पधारे, सर्व समाज को आपका प्रवचन सुनने का अपूर्व लाभ मिला। धन्यवाद! — *चंपालाल जैन*

चंदेरी (म.प्र.)—श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, बड़ा मंदिर, तद्वर्ण-चौबीसी। यहाँ पर्वराज अत्यंत उल्लासपूर्ण एवं उचित प्रभावक ढंग से संपन्न हुआ। इस अवसर पर भोपाल मुमुक्षु मंडल की ओर से विद्वान श्री मधुकरजी आये थे; प्रतिदिन दस धर्म आदि विषयों पर प्रवचन, शिक्षण तथा रात्रि को जिनेन्द्र-भक्ति का कार्यक्रम अति आकर्षक रहा। अनंत चतुर्दशी के दिन चौबीसों मंदिरजी पर समूहपूजन तथा रात्रि को जिनेन्द्रदेव के जन्मकल्याणक पर इन्द्र द्वारा किये जानेवाले नृत्य का कार्यक्रम विशेष आकर्षक रहा। जिसमें सभी वर्ग के लोगों की उपस्थिति रही। यहाँ स्वाध्याय मंडल की स्थापना की गयी, क्षमावाणी पर्व सार्वजनिकरूप में मनाया गया, जिसमें सभी धर्म के वक्ताओं ने भाषण दिये एवं स्थानीय कवियों का धार्मिक काव्यपाठ हुआ। — *मंत्री, दिगम्बर जैन बड़ा मंदिर, चंदेरी (म.प्र.)*

द्रोणगिरि (म.प्र.)—ब्रह्मचारी बाबूलालजी (सोनगढ़) पधारे; आपका सुबह-शाम आध्यात्मिक प्रवचन होता था; आप पूज्य कानजीस्वामी के प्रति अत्यंत आभार प्रगट करते थे। पर्वराज सानंद मनाया गया। — **विजयकुमार**

छिन्दवाडा—श्री अमोलकचंदजी जैन 'बंधु' अशोकनगर निवासी पर्व में पधारे थे; आपने पूज्य स्वामीजी द्वारा ज्ञाननिधि पाई है। धर्मवात्सल्यपूर्वक प्रवचन, शंका-समाधान द्वारा सभी को पूर्ण संतोष हुआ है। आपका आना सौभाग्य का विषय रहा।

— *मंत्री, शांतिकुमारजी पाटनी*

राघौगढ़—फतेपुर निवासी श्री बाबूलाल नाथालाल पधारे; आपके द्वारा अच्छा धार्मिक प्रभावना हुई। ७ घंटे का कार्यक्रम था। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यहाँ आपके शुभ हस्त से स्थायी पाठशाला का शुभारंभ किया गया; छोटे-छोटे बच्चों में भी धार्मिक अभ्यास का उत्साह पैदा हुआ। — **मंत्री, श्री दिगम्बर जैन मंडल**

नागपुर—श्री कपूरचंदजी (केसलीवाले, जिला सागर) जो कई बरसों से सोनगढ़ जाकर तत्त्व अभ्यास करते हैं, आपके द्वारा हमें इस पर्वराज में धार्मिक प्रभावना में बल मिला, धार्मिक विषय पर सुंदर प्रकाश डाला, समाज के प्रमुख शेठजी स. सिंघई मोतीलालजी, शेठ किशनलालजी रावका आदि के भाषण हुए। — **मंत्री- अंबादास देवलसी तथा संपतराय जैन**

भोपाल—पंडित श्री जगनमोहलाल शास्त्रीजी पधारे थे। प्रतिवर्ष की भाँति सभी कार्यक्रम सुचारूरूप से संपन्न हुए। — ***डालचंद जैन***

गोहाटी (आसाम)—श्री बाबूभाई महेता फतेपुर निवासी पधारे थे। हम कई साल से आपकी प्रतीक्षा करते थे। उसके लिये हम लोग सोनगढ़ संस्था के आभारी हैं। श्री बाबूभाई का १५ दिन का कार्यक्रम बहुत ही उपयोगी रहा, वास्तविक रुचि पैदा हो गई, गलतफहमी दूर हुई। आपके प्रवचन हमेशा तीन घंटे चलते थे; धर्म-जिज्ञासु समाज ने एकाग्रता से सुनकर पूरा लाभ लिया, युवक वर्ग में रुचि जागृत हुई, बाबूभाई की जितनी प्रशंसा की जाये थोड़ी ही है, उनका उपकार हम कभी भूल नहीं सकते। — ***श्री नेमीचंद पाण्डया***

मंत्री, श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल, गोहाटी

मलकापुर—भोपाल मुमुक्षु मंडल द्वारा पंडित राजमलजी सा. पधारे थे; सुबह मोक्षमार्गप्रकाशक, दोपहर में छहढाला, समयसार रात्रि को दसलक्षण धर्म, शंका-समाधान

द्वारा धर्मतत्त्वपर उत्तम प्रकाश डाला गया। जिज्ञासुओं की उपस्थिति बड़ी संख्या में रही। सारा श्रेय सोनगढ़ प्रचार-विभाग को है। हम सब अत्यंत आभारी हैं। — **नेमीचंद बालचंद शाह**

बरायठा (सागर)—द्रोणगिरि से पंडित बाबूलालजी बहुत साल से सोनगढ़ में अध्ययनार्थ जाते हैं, वे हमारे समाज के अनुरोध से पधारे; एक महीना ठहरे। प्रतिदिन समयसार, प्रवचनसार, मोक्षमार्गप्रकाशक पर प्रवचन करते थे; समस्त समाज विशेष रुप से लाभ लेती थी। सभी को शुद्ध आध्यात्मिक प्रवचन सुनने का लाभ मिला है, वह मूलभूत श्री कानजीस्वामी की देन है। उनके प्रति समाज को पूर्ण आदरभाव है। — **विजयकुमार रांधेलीय**

नीमच (म.प्र.)—कोटा निवासी पंडित घासीलालजी द्वारा सर्वज्ञ कथित धर्म-तत्त्व संबंधी तात्त्विक प्रवचन एवं चर्चा का समाज ने अपूर्व लाभ लिया। आपके इस सहयोग के लिये हम आपके अत्यंत आभारी हैं। — **प्रहलाद जैन** *मंत्री, श्री दिगम्बर जैन समाज, नीमच*

भिण्ड (म.प्र.)—ब्रह्मचारी श्री दुलीचंदजी, इंदौर दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम के भूतपूर्व उप-अधिष्ठाता, आप सोनगढ़ में थे, हम सबको धर्मामृतपान कराने हेतु पधारे; अतः हम सब सोनगढ़ संस्था के आभारी हैं। निश्चय-व्यवहार के विषय में सर्वज्ञ-वीतरागकथित तत्त्वज्ञान का प्रयोजन, क्रमबद्ध पर्याय, पुरुषार्थ आदि का स्वरूप अति स्पष्ट करके अच्छी तरह समझाया; गत पर्वराज में हमें विद्वान ब्रह्मचारी हेमराजजी द्वारा जो लाभ मिला था, उसीप्रकार इस साल भी उत्तम लाभ मिला है। — ***गोपालदास जैन,*** *मंत्री, दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल, भिंड*

शिवपुरी (म.प्र.)—पंडित गोविंददासजी (खडेरी-दमोह) द्वारा सर्वज्ञ कथित स्वतंत्रता की घोषणा करनेवाले प्रवचनों का हमने अपूर्व लाभ लिया, सोनगढ़ संस्था का यह महान उपकार है। पंडितजी द्वारा यहाँ मुमुक्षु मंडल की स्थापना हुई; आत्मधर्म के १५ ग्राहक बनाये। आत्मधर्म के लिये १०१) रुपये देकर स्थायी सदस्य एक भाई बने। समाज में अपूर्व धर्मप्रभावना हुई यह महान लाभ है। — ***मंत्री मुमुक्षु मंडल***

हरदा (म.प्र.)—सोनगढ़ में जैन शिक्षण वर्ग में से प्रतिष्ठाचार्य पंडित फतेहचंदजी यहाँ हमारे निमंत्रण अनुसार पधारे। समवसरण मंडल विधान, प्रवचन आदि सभी कार्यक्रम द्वारा सभी को अतीव संतोष हुआ, श्रीजी की रथयात्रा निकली, तथा दिनांक २७-९-६९ के दिन मुमुक्षु मंडल की स्थापना पंडितजी द्वारा हुई। समस्त भारत में सोनगढ़ संस्था के द्वारा जो पवित्र धर्म का प्रकाश हुआ है, वह हमें मिलता ही रहेगा। — ***ओमप्रकाश जैन,*** *मंत्री, दिगम्बर जैन समाज, हरदा*

बीना बजरिया (म.प्र.)—सोनगढ़ से श्री जयंतीलाल भणसाली पधारे थे; १६ दिन तक कार्यक्रम उत्तम प्रकार से चलाया। हमेशा छह घंटे उपरांत दो घंटा ऐसा समय दे रहे थे कि जिसमें शंका-समाधान, तत्त्वचर्चा का लाभ समाज लेती थी। तारीख २९-९-६९ को सागर शहर में पर्वराज निमित्त पधारे हुए पंडित श्री हिम्मतलालजी (बम्बई निवासी) आमंत्रणवश यहाँ पधारे। एक घंटा यहाँ तथा एक घंटा इटावा जिनमंदिर में विशाल जनसमूह में मार्मिक प्रवचन दिये, विद्वानों के साथ चर्चा-गोष्ठी, शंका-समाधान हुआ था। तारीख ३० को बीना बजरिया में दो प्रवचन दिये। बीना में पुरानी बस्ती इटावा जहाँ जैन समाज अच्छी संख्या में है, वह सब अच्छा लाभ लेते थे। स. सिंघई श्रीनंदनलालजी ने विशेष भाग लिया, नगरपिता श्री गोपालराव का सहयोग जैन समाज को बहुत उपकारी रहा, समाज ने सोनगढ़ संस्था का भारी आभार प्रगट किया। — *मंत्री, लखमीचंद, बी.कॉम.*

सतना (म.प्र.)—हमारी प्रार्थनानुसार सोनगढ़ संस्था ने अपने दो विद्वान भेजकर पर्वराज-उत्सव अतीव उत्साहमय बनाया। अनेक सज्जनों का मत है कि—गत ३० वर्षों के पश्चात् इतने उत्साह से यह पर्व मनाया गया है। रखियाल गुजरात निवासी श्री नेमीचंदजी तथा चंदुलालजी ने तत्त्वज्ञान एवं जिनेन्द्र भक्ति का रसास्वादन कराके हमारे हृदयों में भारी परिवर्तन किया है; सोनगढ़ के संबंध में जो भ्रांतियाँ थी, वे नष्ट हो गईं। दोनों विद्वान संयमी और सुदृढ़ चिंतनशील अनुभवी हैं। सोनगढ़ में वही निर्माण किया है जिससे जैन समाज को सच्ची राह मिले। हम सब सोनगढ़ संस्था के व स्वामीजी के कितने गुण गायें? हमारी कार्यकारिणी समिति ने यह निर्णय किया है कि हम सभी लोग यहाँ पर आगामी अषाढ़ मास में विस्तृतरूप में धार्मिक शिक्षण शिविर का आयोजन करेंगे और श्रावण मास में सोनगढ़ जाकर स्वामीजी एवं शिक्षण कक्षा का लाभ लेंगे। — ***हुकमचंद जैन,*** *मंत्री, श्री महावीर दिगम्बर जैन, पा. संस्था ट्रस्ट, सतना (म.प्र.)*

मौ (जिला भिण्ड, म.प्र.)—पर्वराज आनंदपूर्ण वातावरण में संपन्न हुआ। श्री ब्रह्मचारी भंवरलालजी पधारे थे। सभी कार्यक्रम बड़े उत्साह से संपन्न हुए, धर्मवृद्धि हुई। ब्रह्मचारीजी तथा सोनगढ़ के हम आभारी हैं। — ***शांतिकुमार जैन,*** *मंत्री, दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल*

महिदपुर (म.प्र.)—इंदौर निवासी पंडित श्री फूलचंदजी पांड्या पधारे। १० दिनों तक सुबह ५.०० बजे से रात्रि को ६.३० बजे तक नियमित रूप से सब प्रोग्राम चले। आपने अपने ३० वर्ष के स्वाध्याय के निचोड़ का सभी पहलुओं से अमृतपना कराया, सोनगढ़ की शान

बढ़ाई, वीतरागधर्म की दिव्यता-अलौकिकता का सच्चा रहस्य प्रगट किया। आपके प्रवचनों की शैली इतनी सरल भाषा में है कि कठिन से कठिन विषय एवं सूक्ष्म तत्त्वचर्चा भी जन साधारण को समझ में आ सके, इस कारण समाज में धर्म के प्रति जागृति बढ़ी है। सकल जैन समाज ने सोनगढ़ के प्रचार विभाग एवं पंडितजी के प्रति अत्यंत आभार प्रगट किया।

विशेषः—पर्वराज के पूर्व श्री पंडित धन्नालालजी सा. ग्वालियरवाले यहाँ पधारे और तीन दिन ठहरे थे। उनके द्वारा तात्विक प्रवचन, जैन शिक्षण, शंका-समाधान आदि का लाभ समाज ने अच्छी तरह लिया, आपका अनुभवप्रधान प्रवचन अत्यंत रोचक व उपकृत रहा, उज्जैन होते हुए आप जबलपुर पधारे। — *शांतिलाल सोगानी*

जबलपुर—श्री पंडित धन्नालालजी के इस पर्वराज में पधारने से समाज को काफी लाभ हुआ है। जवाहरगंज मंदिरजी में हमेशा तीन घंटे का कार्यक्रम था। हजारों की संख्या में श्रोतागण ने आ-आकर बहुत संतोष-उत्साह सहित लाभ लिया। विदाई समारोह में ५००) की थैली भेंट दी गई तो आपने अपने पास से ११) मिलाकर वह थैली मंडल को ज्ञान खाते में भेंट दी। आध्यात्मिक प्रवचन हृदय खोलकर अनुभूति की प्रेरणादायी होने से जिज्ञासु जैन समाज ने पंडितजी एवं स्वामीजी के प्रति अत्यंत कृतज्ञता प्रगट की; आपको लिवा जाने के लिये गाँवों से कई मुमुक्षु आते रहते थे। पर्वराज संपन्न होते तुरंत श्री शिखरचंदजी जैन कांधलवी बड़ौत निवासी जो सोनगढ़ में रहते हैं—आप करेली पधारे थे, वहाँ से जबलपुर मंडल की प्रार्थना पर आपने अपना अमूल्य समय देकर ६ दिन उत्तमोत्तम प्रवचन दिये, अनेक उलझी हुई गुत्थियों का समाधान हुआ। — **फूलचंद जैन,** *एडवोकेट, सभापति मुमुक्षु मंडल*

जयपुर (राज.)—इस वर्ष स्थानीय समाज के आग्रह पर श्री पंडित हुकमचंदजी शास्त्री एम.ए. ने पर्यूषण में जयपुर ही रहना स्वीकार कर लिया। आप सुप्रसिद्ध पंडित टोडरमल स्मारक भवन के प्रधान हैं। पर्वराज में तेरापंथी बड़ा मंदिर में प्रातः समयसार के कर्ताकर्म अधिकार पर बड़े ही अनूठे आध्यात्मिक रस से पूर्ण प्रवचन दिये। मंदिर खचाखच भरा रहता था। शाम को टोडरमल स्मारक भवन और जौहरी बाजार के बड़ा मंदिर में प्रवचन होते थे। आपके प्रवचन में तर्कसंगत जैन परिभाषाएँ, प्रभावपूर्ण तात्त्विक विवेचन, घंटों तक एक ही विषय पर विषयांतर हुए बिना होनेवाले प्रवचनों के बावजूद भी जनता में आकुलाहट पैदा नहीं होती थी। सबको उत्सुकता बनी रहती है। टोडरमल स्मारक भवन में भी भारी संख्या

में जनता प्रवचन सुनने को आती थी। मुलतानवालों के आग्रह से आदर्शनगर में भी आपका प्रवचन हुआ, तब शहर से बसों द्वारा अधिक तादाद में जानता सुनने आई। जयपुर में पंडितजी के समागम से अपूर्व धर्म प्रभावना हुई। *—महेन्द्रकुमार सेठी*

सागर (म.प्र.)—पंडित श्री हिम्मतलालजी सोनगढ़ से पधारे थे। प्रतिदिन ४ प्रवचनों के साथ-साथ जैन शिक्षण शिविर भी चलता रहा, त्याग धर्म के दिन समाज ने संस्थाओं को दान भी दिया; शैली सुस्पष्ट होने से हमें ज्यादा लाभ मिला।

— डालचंदजी तथा पंडित ताराचंदजी सर्राफ

पालेज—पर्यूषण सानंद मनाया गया। पंडित मनसुखभाई के प्रवचन हुए। *— राजकुमार*

लोहादरा (जिला देवास, व्हाया इंदौर)—सोनगढ़ से श्री सुजानमलजी मोदी दसलक्षण पर्वराज पर यहाँ पधारे। अपूर्व ढंग से धर्म-प्रभावना हुई। मोदीजी की तत्त्व समझाने की शैली समाज को ज्यादा पसंद आई, अध्यात्मिक जागृति हुई तथा नया स्वाध्यायमंदिर बना है। व्यवस्थित उत्तम ढंग से दिगम्बर जैन मुमुक्ष मंडल की स्थापना हुई; अध्यक्ष श्री माणिकचंदजी पाटोदी हैं। श्री मोदीजी द्वारा प्रतिदिन साढ़े आठ घंटे का धार्मिक कार्यक्रम रहा। सचमुच उल्लासमय वातावरण और धर्म-प्रभावना देखते ही बनती थी। हम मोदीजी तथा सोनगढ़ संस्था के अत्यंत आभारी हैं। *— छगनलाल जैन, मंत्री*

देहली—ब्रह्मचारी हेमराजजी सा. सोनगढ़ से पधारे थे। पर्वराज में शास्त्र प्रवचन शंका-समाधान का समाज ने अति हर्षपूर्वक लाभ लिया, हम आपके अत्यंत आभारी हैं। ब्रह्मचारीजी का प्रवचन प्रयोजनभूत ज्ञानमय आध्यात्मिक रस से भरपूर होने से यहाँ की जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा, जिसमें विवाद का अवसर नहीं रहा। सब प्रोग्राम अच्छी तरह चलता रहा। *— **सुरेन्द्रकुमार जैन,** व्य. श्री दिगम्बर जैन खंडेलवाल जैन मंदिर पंचायत, वैद्यवाडा*

(२) ब्रह्मचारीजी गांधीनगर तथा मोडल बस्ती में भी वहाँ की समाज द्वारा आमंत्रण आने से पधारे थे और वहाँ समाज ने आपके प्रवचनों एवं धर्मचर्चा का लाभ लिया। देहली दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल के सभी सदस्यगण बहुत ही आभार प्रगट करते हैं।

*— **श्रीराम जैन,** सेक्रेटरी, देहली जैन मुमुक्षु मंडल*

आलंद (जिला सोलापुर, महा.)—ब्रह्मचारी पंडित दीपचंदजी गोरे को खास आमंत्रण से समाज ने बुलाया। जिनमंदिर में हमेशा शास्त्रसभा, शंका-समाधान तथा टेप रील

द्वारा पूज्य कानजीस्वामी का प्रवचन और उनका मराठी भाषा द्वारा खुलासा किया जाता था। आपने चैतन्य-आत्मा की महिमा अनेक प्रकार से बढ़ाई, पंडितजी द्वारा यहाँ दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंडल की स्थापना हुई। स्वाध्याय के लिये सम्यग्दर्शन मराठी भाषा में १२ पुस्तक तथा लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका २५ प्रति श्री नवनीतभाई सी. जवेरी बम्बई द्वारा दी गई। समस्त समाज को फिल्म द्वारा जैन तीर्थक्षेत्रों का परिचय कराया। सकल जनता में अपार उत्साह और धर्मप्रेम जागृत हुआ।

गुलबर्गा—यहाँ भी आलंद की भाँति काफी धर्म-संस्कार पैदा हुआ। पंडितजी एकबार कार्यक्रम पूर्ण करके आलंद आये तो फिर दूसरी बार अत्याग्रह से बुलाकर जैन समाज ने धर्मतत्त्व की जिज्ञासा विशेषरूप से प्रगट की। फिल्म द्वारा यहाँ भी तीर्थक्षेत्रों का दर्शन कराया गया था। *— रतनचंद गुलाबचंद एडवोकेट, आलंद*

मुरुड (जिला उस्मानाबाद, महा.)—प्रचारकजी ब्रह्मचारी दीपचंदजी जो हमारे माननीय अध्यक्ष महोदय श्री नवनीतभाई सी. जवेरी द्वारा निःस्वार्थ धर्मप्रभावना का कार्य करते हैं। आप लिखते हैं कि महाराष्ट्र की धर्मप्रभावना तीन मास के दौरान में बहुत उत्साह से हो रही है, आलंद में पर्यूषणपर्व सानंद हुआ, बड़ी संख्या में समाज ने लाभ लिया। कासार शीरसी आये। सुरुड में स्वाध्याय मंडल की स्थापना मुनिराज ऋषभसागरजी की उपस्थिति में हुई। यहाँ दिन में तीन बार धार्मिक कार्यक्रम चालू है। जगह-जगह समाज का अच्छा सहयोग मिल रहा है। *— दीपचंद मा. जैन*

बम्बई—मुम्बादेवी रोड श्री सीमंधर भगवान के दिगम्बर जिनमंदिर में पर्यूषणपर्व हरसाल माफिक सानंद मनाया गया है। इस साल सोनगढ़ से श्री नवलचंदभाई पधारे थे; आपके प्रवचनों का सभी ने नियमितरूप से लाभ लिया तथा आभार प्रगट किया।

घाटकोपर (बम्बई उपनगर)—पर्वराज के अवसर पर श्री शशिभाई पधारे थे, प्रतिदिन प्रवचन, शंका-समाधान, जिनेन्द्र-भक्ति तथा रथयात्रा हुई, सुगंधदसमी के दिन स्पेशल बसों के द्वारा बम्बई के समस्त दिगम्बर जिनमंदिरों में दर्शनार्थ जाने के कार्यक्रम में ३२५ संख्या में यात्री निकले थे। क्षमावाणी पर्व के दिन श्री जिनेन्द्र भगवान का १०८ कलशों से अभिषेक हुआ। उत्सव सानंद मनाया गया। *— अध्यक्ष-मनमोहनलाल छो. गांधी*
मंत्री-रसिकलाल धोलकिया, नवीन भूपतभाई दोशी

मलाड (उपनगर बम्बई)—अहमदाबाद से श्री चंदुलालभाई पधारे थे; पर्वराज बड़े उत्सव सहित संपन्न हुआ। दो घंटे आपका प्रवचन उपरांत पूज्य स्वामीजी के प्रवचन टेपरील द्वारा सुनाये जाते थे। हजारों दर्शनार्थियों की भीड़ रहती थी, सुगंधदशमी के दिन २५० संख्या में मुमुक्षुओं ने पाँच मोटर बसें लेकर बम्बई तथा उपनगरों में सभी दिगम्बर जैनमंदिर के दर्शनार्थ जाने का कार्यक्रम रखा। अंतिम दिन प्रीतिभोज हुआ। श्री खेमचंदभाई शेठ कलकत्ता से पधारे, आपके भी दो प्रवचन हुए। उत्सव में सभी का धर्मप्रेम-वात्सल्य चिरस्मरणीय है।

— अमृतलाल धीरजलाल शाह मंत्री, मलाड (बम्बई)

नागपुर—दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल के अध्यक्ष श्री गुलाबचंदजी तथा श्री प्रद्युम्नकुमारजी, संपतरायजी, श्रीमान् किशनसिंहजी रावका आदि ९ अग्रणियों के वक्तव्य हुए, मंडल के द्वारा जयपुर टोडरमल स्मारकभवन स्थापित वीतराग विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड की पाठ्य-पुस्तकें परीक्षाक्रम आदि का परिचय दिया, स्थानीय पाठशालाओं में पाठ्य-क्रम शुरु किया जाये तो उपस्थित जनसमूह ने एवं प्रमुख श्री कपूरचंदजी साहित्यरत्न श्री महावीर पाठशाला के अध्यक्ष द्वारा इस पाठ्य-क्रम को कार्यकारिणी के समक्ष विचार हेतु रखने का आश्वासन दिया है। इस साल जयपुर विद्यापीठ की पुस्तकों पर परीक्षा देनेवालों को जयपुर से प्रमाण-पत्र दिये गये हैं, वह वितरण किये, तीन वर्ष की मंडल की गतिविधि बतलाई। पंडित श्री धन्नालालजी (ग्वालियर), पंडित श्री गेंदालालजी बूंदी, पंडित प्रकाशचंदजी शास्त्री हितैशी (संपादक-सन्मति संदेश), पंडित श्री भगवानदास (रायपुर निवासी), श्री पंडित हुकमचंदजी एम.ए. शास्त्री, जयपुर, ब्रह्मचारी पंडित रमेशचंदजी सोनगढ़ आदि विद्वानों द्वारा मंडल तथा जिज्ञासु को आशातीत लाभ हुआ है; धर्म की महान प्रभावना हुई है। मंडल के संस्थापक मूकसेवी श्री धन्नालालजी पांडे (आपने भोपाल में भी मंडल का प्रारंभ किया था) आपका बहुमान उपस्थित सभी जनसमूह ने किया था, अंत में श्री लालचंद मोदी ने आभार प्रदर्शन किया।

—शिखरचंद बड़कुल

नाईरोबी (अफ्रीका)—यहाँ दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल में बड़े उत्साह से पर्वराज के सभी कार्यक्रम सानंद मनाये गये।

— जवेरचंद पूनमचंद

आरोन (गुना, म.प्र.)—पंडित मांगीलालजी सा. गुना निवासी को धर्मपर्व में प्रवचन के लिये भेजा। अतः हम सकल समाज सोनगढ़ संस्था का आभार प्रगट करते हैं। प्रतिदिन ७

घंटे तक क्रमशः शिक्षण क्लास, पूजन, शास्त्र प्रवचन, भजन-कीर्तन, शंका-समाधान उपरांत निश्चय-व्यवहार, षट्कारक, चार अभाव आदि विषय द्वारा वस्तुतः काफी प्रकाश डालकर समाज को भारी लाभ पहुँचाया, धार्मिक संस्कार प्रबल हुए। पर्यूषण के ३ दिन पश्चात् ब्रह्मचारीजी श्री झमकलालजी जो कि सोनगढ़ से गुना पधारे थे; आरोन समाज के निवेदन पर यहाँ पधारे। तीन प्रवचन हुए, समाज ने बराबर लाभ लिया। अब वर्तमान में पंडित कैलाशचंदजी बुलन्दशहर निवासी, समाज के आग्रह से गुना ठहरे हैं, वहाँ की समाज को लाभ दे रहे हैं। प्रतिदिन ७ घंटे तक क्रमशः प्रवचन-क्लास-धार्मिक शिक्षा चलती है; समाज में अनेक भ्रांतियों का निराकरण हुआ, पंडितजी छोटे-बड़े सभी को उत्साह सहित धार्मिक रुचि में लगा रहे हैं, संपूर्ण समाज ने सोनगढ़ का आभार प्रदर्शित किया।

*— **राजमल जैन,** मंत्री, दिगम्बर जैन समाज, आरोन*

हिम्मतनगर (उत्तरी गुजरात)—महावीरनगर सोसायटी। तृतीय वार्षिक अधिवेशन में दिगंबर जैनधर्म शिक्षणसमिति-गुजरात द्वारा तारीख ९-१०-६९ से तारीख २०-१०-६९ तक शिक्षणशिविर विशाल आयोजन सहित चलाया गया, शंका-समाधान तथा प्रवचनकर्ता श्री खीमचंदभाई शेठ सोनगढ़ तथ्था श्री पंडित फूलचंदजी सिद्धांत शास्त्री थे। श्री चिमनलालजी तथ्था नेमीचंदजी द्वारा छहढाला, जैनसिद्धांत प्रवेशिका शिक्षणवर्ग में चलते थे। प्रतिदिन करीब आठ घंटे का कार्यक्रम था, प्रथम दिन श्री नवनीतभाई सी. जवेरी के शुभहस्त से तथा पंडित श्री फूलचंदजी के अध्यक्ष पद से समारोह की उद्घाटन विधि हुई, विद्वानों तथा मेहमानों का स्वागत किया गया; प्रथम दिन ४०० मेहमान आये थे। अंतिम दिन जिनवाणी रथयात्रा, तथा अतिथि-विशेष श्री महेन्द्रकुमारजी शेठी की अध्यक्षता में एक सम्मान समारोह मनाया गया। उस समय बहुत बड़ी संख्या में उपस्थित थे, सभी ने सोनगढ़ संस्था एवं पूज्य स्वामीजी का उपकार प्रगट किया। ब्रह्मचारी केशवलालजी आदि ने मुझे सही दिशा कैसे मिली सुनाया। एक अग्रणी प्रतिष्ठा प्राप्त हेडमास्टर रायचंदभाई जो अनेक धर्ममतों के अभ्यासी हैं—आपने कहा कि, 'मैंने १२ दिन यह धर्मशिक्षा और सत्-संगति द्वारा अपूर्व तत्त्वों का सार एवं प्रयोजनभूत बात समझी जो कभी नहीं समझा था। जैन लोग भी हमको ऐसी निर्मल बता सकते नहीं थे, अब हमारी निधि और सच्चे उपाय का पक्का ज्ञान हुआ है और इस ढंग से समस्त समाज में प्रचार हो तो सही मार्ग पाकर सच्चे मार्ग को क्यों नहीं समझें ?'

पंडितजी फूलचंदजी शास्त्री तथा खीमचंदभाई को सन्मानपत्र दिया गया। रात्रि को पंच-कल्याणक की फिल्म-प्रदर्शन में बहुत संख्या ने भाग लिया। शिक्षण में लाभ लेनेवालों ने, ब्रह्मचारीगणों ने तथा श्री रायचंदभाई पटेल, श्री बाबूलाल कचराभाई कोटडीया ने सबसे अनुरोध किया कि हरसाल ऐसे धार्मिक शिक्षणवर्ग में आकर लाभ लेने से समय, शक्ति, उत्साह का सदुपयोग होता है। शिक्षार्थियों को श्री नवनीतभाई बम्बई, तथा श्री भाईलालभाई मद्रास की ओर से वीतराग-विज्ञान पुस्तक भाग १-२ भेंट स्वरूप दिया गया। इस सबका मुख्य श्रेय फतेपुर निवासी श्री बाबूभाई को है। सभी को धन्यवाद!

आत्मधर्म के आजीवन सदस्य

२८— श्री क्षुल्लक पूर्णसागरजी महाराज, दमोह।
२९— श्री सुंदरलालजी रमेशकुमारजी जैन, भोपाल।
३०— श्री मा. कुमुदेशचंद्र जैन, कानपुर।
३१— श्री अमोलकचंदजी जैन बंधु, अशोकनगर।
३२— श्री दिगम्बर जैन समाज, नीमच।
३३— श्री पूनमचंदजी कटारिया, इंदौर।
३४— श्रीमती कमलाक्षी प्रसन्नकुमार रावत, शिवपुरी।
३५— श्री नेमीचंदजी सरावगी, गोहाटी।
३६— श्री शिखरचंदजी अजमेरा, गोहाटी।

आप भी १०१) देकर आत्मधर्म के आजीवन सदस्य बन सकते हैं।

हिन्दी साहित्य प्रकाशन संबंधी आवश्यक विज्ञप्ति

मुमुक्षु भाई-बहिनों को सूचित करते हुए हर्ष होता है कि— श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट ने निम्नोक्त पुस्तकें प्रकाशित करने का विचार किया है। इसलिये जिन नगरों में मुमुक्षु मंडल हैं, वे पत्र द्वारा सूचित करें कि उन्हें किस पुस्तक की कितनी प्रतियों की आवश्यकता है। मुमुक्षु मंडलों की ओर से पर्याप्त संख्या में आर्डर आने पर पुस्तकें छपाने की व्यवस्था की जायेगी, इसलिये शीघ्र हमें सूचित करें।

मुमुक्षु मंडलों के अध्यक्ष महानुभावों से निवेदन है कि वे अपने मंडल के लिये आवश्यक पुस्तकों की बिल्कुल सही संख्या सूचित करें। पुस्तकों के लिये कोई अग्रिम राशि भेजने की आवश्यकता नहीं है; परंतु इस बात की गारंटी दें कि आपका मंडल इतनी प्रतियाँ अवश्य खरीद लेगा।

जिन नगरों में मुमुक्षु मंडल नहीं हैं, वहाँ के मुमुक्षु व्यक्तिगत रूप से हमें अपनी आवश्यकतानुसार पुस्तकों की संख्या लिखें।

संस्था के नियमानुसार पुस्तकों का मूल्य लागत से कम रखा जायेगा। किस पुस्तक का कितना मूल्य रखा जाये, वह बाद में तय किया जायेगा। अभी निम्नोक्त तेरह पुस्तकें प्रकाशित करने का विचार है:—

(१) श्री समयसार शास्त्र (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत)

(२) श्री श्रावकधर्म प्रकाश (श्री पद्मनंदि-पंचविंशतिका के देशव्रतोद्योतन अधिकार पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)

(३) श्री अनुभव प्रकाश (श्री दीपचंदजी कासलीवाल कृत)

(४) श्री ज्ञानचक्षु (श्री समयसार गाथा ३२० की जयसेनाचार्यकृत 'तात्पर्यवृत्ति' टीका पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)

(५) सम्यग्दर्शन भाग-१ (स्वामीजी के प्रवचन)

(६) भेदविज्ञानसार (समयसार के अन्तिम भाग पर प्रवचन)

(७) ज्ञानस्वभाव-ज्ञेयस्वभाव (प्रवचनसार के तथा समयसार गाथा ३०८ से ३११ तक के प्रवचन)

(८) आत्मवैभव (समयसार ४७ शक्तियों पर प्रवचन)

(९) समयसार प्रवचन, भाग १-२ (पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)

(१०) समयसार प्रवचन, भाग ३ (पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)

(११) समयसार प्रवचन, भाग ४ (पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)

(१२) समयसार प्रवचन, भाग ५ (पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)

(१३) दसलक्षण धर्म (पद्मनन्दि पंचविंशतिका तथा स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा के प्रवचन)

प्रेषक—

साहित्य प्रकाशन समिति

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़

विज्ञप्ति

पूज्य श्री कानजीस्वामी की ८०वीं जन्म-जयंती के उपलक्ष में सोनगढ़ में जो भव्य एवं आदर्श परमागम मंदिर निर्माण कराने का निर्णय किया गया है, उसमें अनेक मुमुक्षुओं की ओर से गाथाएँ उत्कीर्ण कराने के लिये अमुक रकमें लिखवायी जा रही हैं। कुछ भाई-बहिनों ने ऐसी सलाह दी है कि एक-एक गाथा उत्कीर्ण कराने के लिये अमुक रकम तय कर दी जाये तो दान देनेवालों को इस बात का संतोष होगा कि हमने भी इस पवित्र कार्य में अमुक गाथाएँ उत्कीर्ण करवाकर अपना यत्किंचित योगदान दिया है। इस सलाह को ध्यान में लेकर गाथा और उसकी टीका के लिये ५०१) पाँच सौ एक रुपये की रकम निश्चित की गई है।

अभी तक जो रकमें आयी हैं, उनका हिसाब भी एक गाथा-टीका के ५०१) पाँच सौ एक रुपये गिना जायेगा।

जिन मुमुक्षुओं को अपनी ओर से एक पूर्ण गाथा-टीका उत्कीर्ण कराने की भावना हो और जिन्होंने ५०१) पाँच सौ एक रुपये से कम रकम परमागममंदिर हेतु लिखवायी हो, वे बाकी रकम देकर अपनी भावना पूर्ण कर सकते हैं।

लि.—

श्री परमागम मंदिर कमेटी

श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल-बम्बई

❁❁❁❁❁❁❁❁

विज्ञप्ति

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट की ओर से श्राविकाशाला के कम्पाउंड में १६×१० साइज के कमरे बनवाने का निर्णय किया गया है। जो महानुभाव अपने नाम के कमरे बनवाना चाहते हों, वे निम्नोक्त नियमों एवं शर्तों पर बनवा सकते हैं:—

(१) प्रत्येक कमरे के लिये २००१) रुपये ट्रस्ट को देना होंगे।

(२) कमरे की मालिकी ट्रस्ट की रहेगी।

(३) कमरा बनवानेवाले या उनके स्वजनों को आना हो तो १५ दिन पूर्व सूचना मिलने पर कमरा खाली करवा दिया जायेगा।

(४) कमरा बनवानेवाले जब सोनगढ़ से बाहर जायें, तब कमरा ट्रस्ट को सौंपकर जाना होगा। उन्हें अपना सामान रखने के लिये कमरे में ऊपर मचान बनवाकर व्यवस्था कर दी जायेगी।

लि०-

दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

पर में कर्तृत्व का मूल अज्ञान

द्रव्य को परिणाम होता है, क्योंकि प्रत्येक द्रव्य नित्य परिणामस्वभावी है। [परिणाम=परिणति, क्रिया, दशा, हालत, अवस्था, कार्य।] परिणाम परिणामी द्रव्य के बिना नहीं होते; तो फिर परिणाम का कर्ता कौन?-यदि ऐसा माना जाये कि परिणाम तो है, किंतु उसका कर्ता अन्य द्रव्य है; तो परिणाम अर्थात् कार्य का आधार गुण और ऐसे अनंत गुण का आधार द्रव्य स्वतः सिद्ध साबित नहीं होगा। द्रव्य का लक्षण सत् तथा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्त जो सत् वह भी सिद्ध नहीं होगा।

परिणाम प्रति समय नवीन-नवीन होते हैं; ऐसे अनंत परिणामों का समूह, सो गुण है। और ऐसे अनंत गुणों का समूह, सो द्रव्य है। जो जीव परिणाम का कर्ता स्वद्रव्य को न मानकर परद्रव्य को मानता है, वह स्वगुण को और स्वद्रव्य को ही नहीं मानता।

वस्तुतः (सचमुच) प्रत्येक द्रव्य अनादि-अनंत एवं स्वतःसिद्ध होने से उसके सत्तात्मक अनंतगुण और उसके प्रतिसमय होनेवाले उत्पाद-व्ययरूप परिणाम स्वतःसिद्ध हैं;—ऐसी उसकी स्वतंत्र मर्यादा है। 'वस्तु सीम्नो अनतिक्रमात', 'स खलु अचलितस्य वस्तुस्थितिसीम्नो भेत्तुम् अशक्यत्वात्' (समयसार गाथा १०३ टीका) ऐसा त्रिकाल होने से पर से अकृत द्रव्य-गुण तथा पर्याय स्वयमेव अकृत्रिम हैं अर्थात् पर द्वारा किये जायें, ऐसे नहीं हैं।

दृष्टांतरूप से—एक जीव को क्रोधादि परिणाम हुए और वे उसके ज्ञान में ज्ञात हुए; तथा स्वयं किये तो हुए ऐसा स्पष्ट अनुभव से निर्णय होता है; तथापि जो उन्हें पर से-निमित्त से हुआ मानता है, वह द्रव्य-गुण-पर्याय किसी को भी सत् अर्थात् स्वतःसिद्ध नहीं मानता। जिसप्रकार सांख्यादि मत में ईश्वर को लोक का कर्ता माना जाता है, वैसे ही निमित्त से पर का कर्तृत्व माननेवाले मिथ्यादृष्टि हैं। उस कर्तृत्व का मूल अज्ञान है, जो स्वतंत्रता की हिंसा करनेवाला है।

विश्वतत्त्वों का सत्यस्वरूप सम्यक् अनेकांत द्वारा बतलाकर सच्चा समाधान, एवं अपूर्व शांति का उपाय दर्शानेवाले—

सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

१	समयसार	(प्रेस में)
२	प्रवचनसार	४.००
३	समयसार कलश-टीका	२.७५
४	पंचास्तिकाय-संग्रह	३.५०
५	नियमसार	४.००
६	समयसार प्रवचन (भाग-४)	४.००
७	मुक्ति का मार्ग	०.५०
८	जैनसिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग-१	०.७५
	" " " भाग-२	१.००
	" " " भाग-३	०.५०
९	चिद्विलास	१.५०
१०	जैन बालपोथी	०.२५
११	समयसार पद्यानुवाद	०.२५
१२	द्रव्यसंग्रह	०.८५
१३	छहढाला (सचित्र)	१.००
१४	अध्यात्म-संदेश	१.५०
१५	नियमसार (हरिगीत)	०.२५
१६	धर्म के संबंध में अनेक भूलें	बिना मूल्य
१७	अष्ट-प्रवचन	१.५०
१८	मोक्षमार्गप्रकाशक (ढूंढारी भाषा में) (सस्ती ग्रंथमाला दिल्ली)	२.२५
१९	पण्डित टोडरमलजी स्मारिका	१.००
२०	अपूर्व अवसर-प्रवचन	१.५०
२१	बालबोध पाठमाला, भाग-१	०.४०
२२	बालबोध पाठमाला, भाग-२	०.५०
२३	बालबोध पाठमाला, भाग-३	०.५५
२४	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-१	०.५०
२५	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-२	०.६५
	पाँच पुस्तकों का कुल मूल्य	२.६०
२६	लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०.२५
२७	सन्मति संदेश (पूज्य श्री कानजीस्वामी विशेषांक)	०.५०
२८	मंगल तीर्थयात्रा (गुजराती-सचित्र)	६.००

प्राप्तिस्थान :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट,

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट सोनगढ़ के लिये प्रकाशक एवं मुद्रक :

मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)